कविवर नरोत्तमदास-कृत—

सुदामा-चरित

(समीक्षा एवं व्याख्या)

सम्पादक व व्याख्याकार

प्रो० कृष्णदेव शर्मा, एम० ए०

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य संसार

पटना—४ दिल्ली—७

प्रकाशक :
रामकृष्ण शर्मा
अध्यक्ष
हिन्दी साहित्य संसार
दिल्ली और पटना

PK
2095
.N36
S9
1966

तृतीय संशोधित संस्करण १९६६
© हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-७
मूल्य :
एक रुपया पच्चीस पैसे (१२५)

मुद्रक :
श्यामकुमार गर्ग
राष्ट्रभाषा प्रिन्टर्स,
क्वींस रोड, दिल्ली-६

: ८ :

सुदामा-चरित

व्याख्या भाग

श्री गणेश सुमिरन करों, उपजे बुद्धि प्रकाश।
सो चरित बरनन करों, जासे दारिद नास ॥१॥

शब्दार्थ—गनेश=गणेश (हिन्दुओं के एक देवता का नाम है। इन्हें पार्वती नन्दन भी कहा जाता है। इनका सिर हाथी का है। शुभ कार्यों को आरम्भ करने से पहले गणेश जी की स्तुति की जाती है।) सुमिरन=स्मरण, स्तुति, प्रार्थना। बुद्धि-प्रकाश=बुद्धि का प्रखर होना, शुद्ध होना, बुद्धि का निर्मल होना। बरनन=वर्णन। दारिद=दरिद्रता। नास=नाश, समाप्त।

अर्थ—'सुदामा-चरित' को शुरू करने से पूर्व महाकवि नरोत्तमदासजी ने गणेश जी की प्रार्थना के रूप में यह दोहा कहा है। उन्होंने कहा है कि मैं गणेश जी की स्तुति करता हूँ जिससे मेरी बुद्धि निर्मल हो। अब मैं कृष्ण सुदामा की उस कथा का वर्णन करने लगा हूँ जो दरिद्रता को दूर करने वाली और सुख देने वाली है।

विशेष—लगभग सभी महान् कवियों ने अपनी रचना शुरू करने से पहले किसी-न-किसी देवता से प्रार्थना की है। नरोत्तमदास जी ने भी इसी परिपाटी का निर्वाह किया है। इसे मंगलाचरण भी कहा जाता है।

ज्यों गंगा जल पानतें, पावत पद निरवान।
त्यों सिन्धुर-मुख बाततें, मूढ़ होत बुद्धिवान ॥२॥

शब्दार्थ—पान=पीना। पावत=पाते हैं। निरवान=मोक्ष, स्वर्ग, निर्वाण। सिन्धुर-मुख=गणेश जी। बात=कथा, कहानी, वार्ता। मूढ़=मूर्ख।

अर्थ—गणेश जी की स्तुति का महत्त्व बताते हुए कवि ने इस दोहे में

कहा है कि जैसे गंगा के पानी को केवल पी लेने से ही मनुष्य स्वर्ग प्राप्त कर लेता है उसी तरह से गणेश जी की कथा सुनने तथा स्मरण करने से ही मूर्ख भी विद्वान् हो जाता है। वही गणेश जी कवि की इस रचना में कवि की सहायता करें।

विशेष—कवि ने इस दोहे में गणेश जी की कथा के चिन्तन तथा मनन को ही बुद्धिमत्ता प्रदान करने वाला कहा है।

कृष्ण मित्र कै जन्म कौ, ताको बरनन कीन्ह।
सुख सम्पत्ति माया मिले, सु उपदेश जु दीन्ह ॥३॥

शब्दार्थ—कृष्न-मित्र=श्री कृष्ण और उनका मित्र सुदामा।

अर्थ—श्रीकृष्ण और उनके मित्र सुदामा की मित्रता जन्म जन्मान्तरों से चली आ रही है और उन दोनों की मित्रता का ही इस कथा में वर्णन किया गया है। यह कथा सुख, ऐश्वर्य, वैभव धन आदि सभी कुछ देनेवाली है और वह कथा सदा ही सुन्दर उपदेश को देने वाली है।

विशेष—कृष्ण-सुदामा की मित्रता की कथा के महत्व पर इस दोहे में प्रकाश डाला गया।

विप्र सुदामा बसत हो, सदा आपने धाम।
भिक्षा करि भोजन करै, हिय जपत हरिनाम ॥४॥

शब्दार्थ—विप्र=ब्राह्मण।

अर्थ—सुदामा नाम का एक ब्राह्मण था। वह सदा ही अपने गाँव में रहता था। वह ब्राह्मण भिक्षा माँगता था और उसी से अपने जीवन का निर्वाह किया करता था और मन में सदा ही भगवान् के नाम को जपा करता था।

विशेष—कवि ने इस दोहे में प्राचीन काल के उस रिवाज की चर्चा की है जिसके अनुसार ब्राह्मण कोई व्यवसाय नहीं करता था। उसे जोड़ने की क्या आवश्यकता। सादा जीवन भिक्षा से गुजर जाता था और समय प्रभु-चिन्तन में।

ताकी घरनी पतिव्रता, गहे वेद की रीति।
सजल सुशील सुबुद्धि अति, पति सेवा सों प्रीति ॥५॥

शब्दार्थ—घरनी=घरवाली, पत्नी, स्त्री। रीति=नियम।

सलज=लज्जायुक्त। सुबुद्धि=अच्छी बुद्धि वाली।

अर्थ—उस ब्राह्मण (सुदामा) की स्त्री पतिव्रता धर्म का पालन करने वाली थी। वह वेदों में कहे हुए नियमों के अनुसार रहती थी। वह लज्जाशील, अच्छे स्वभाव वाली और अच्छी बुद्धि वाली थी। अपने पति की सेवा से उसे बड़ा प्रेम था।

विशेष—उस काल की भारतीय ब्राह्मण नारी के पतिव्रत, पति सेवा आदि गुणों पर इस दोहे में प्रकाश डाला गया है।

कह्यौ सुदामा एक दिन, कृस्न हमारे मित्र।
करति रहत उपदेश तिय, ऐसो परम विचित्र ॥६॥

शब्दार्थ—तिय=स्त्री, पत्नी।

अर्थ—घर में एक दिन अपनी पत्नी से बातचीत करते समय सुदामा ने कहा कि महाराजाधिराज द्वारिका के नरेश श्रीकृष्ण मेरे बड़े गहरे मित्र हैं। पत्नी को जब इस मित्रता का ज्ञान हुआ तो पति से कहने लगी—

महादानि जिनके हितु, जदुकुल कैरव चन्द।
ते दारिद सन्ताप तें, रहें न किमि निरद्वन्द्व ॥७॥

शब्दार्थ—हितु=मित्र। निरद्वन्द्व=निश्चिन्त।

अर्थ—जिस प्रकार चन्द्रमा कुमुदिनी को विकसित करता है इसी प्रकार यदुवंश को विकास प्रदान करने वाले महान् दानी श्रीकृष्ण जिनके मित्र हों, उन्हें तो गरीबी और निर्धनता के फलस्वरूप होनेवाले कष्टों से तो मुक्त होना चाहिए।

विशेष—इस दोहे में रूपक अलंकार की छटा दर्शनीय है।

श्रीकृष्ण नित्य प्रति दान करते हैं और इधर उनके मित्र को भिक्षा भी पूरी नहीं मिलती। अतः मित्र की मित्रता से निर्धनता दूर करने का सुझाव पत्नी के बुद्धि कौशल का प्रमाण है।

"कह्यौ सुदामा बाम! सुनु, वृथा और सब भोग।
सत्य भजन भगवान कौ, धर्म सहित जप जोग ॥८॥

शब्दार्थ—बाम=पत्नी, स्त्री।

अर्थ—अपनी पत्नि के मुख से ऐसी बात सुनकर सुदामा ने कहा, हे

पत्नी सुन्—सारे सुख, भोग और भोगविलास की सामग्री आदि सभी व्यर्थ हैं। सत्य मार्ग से भटकाने वाले हैं। यह सारे सुख के साधन क्षणभंगुर हैं। वास्तव में इस संसार में यदि कुछ सत्य है, कुछ स्थायी है तो वह धर्मपूर्वक जप-तप-नियम और पूर्ण रीति से प्रभु चिन्तन ही है।

अलंकार—इसमें आत्मतुष्टि अलंकार है।

विशेष—सुदामा के शब्दों में ब्राह्मण के आत्म तुष्टि के गुण का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। उसे केवल प्रभु चिन्तन ही से काम होना चाहिए।

लोचन कमल दुख मोचन तिलक भाल,
स्रवननि कुण्डल मुकुट धरे माथ हैं।
ओढे पीत बसन गरे में बैजयन्ती माल,
शंख चक्र गदा और पद्म लिए हाथ हैं।
कहत नरोत्तम सन्दीपन गुरु के पास,
तुमही कहत हम पढ़े एक साथ हैं।
द्वारिका के गए हरि दारिद हरेंगे पिय,
द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं॥ ९॥

शब्दार्थ—लोचन=नयन। मोचन=छुड़ाने वाले। स्रवननि=कानों पर। भाल=माथा। पीत वसन=पीले वस्त्र। बैजयन्ती माल=श्रीकृष्ण जी के पहनने की पाँच रत्नों से बनी हुई माला। सन्दीपनि=सुदामा तथा कृष्ण के गुरू का नाम। पद्म=कमल।

अर्थ—सुदामा के मुख से उदासीनता पूर्ण केवल कोरी ज्ञान की बातें सुन कर उसकी पत्नी बोली कि श्रीकृष्ण विष्णु के पूर्ण अवतार हैं। जिनके नेत्र कमल के समान हैं। संसार के सभी प्रकार के दुःखों से छुड़ाने वाले हैं। उनके माथे पर तिलक है। कृष्णजी के कानों में कुण्डल हैं और माथे पर मुकुट शोभा पा रहा है। उन्होंने पीले वस्त्र पहने हुए हैं और गले में वैजयन्ती माला धारण की हुई है। वे अपने हाथों में शंख, चक्र, गदा और कमल पकड़े हुए हैं इस प्रकार से सभी प्रकार से पूर्ण विष्णु के अवतार श्री कृष्ण जी के साथ तुम संदीपनि गुरू के पास इकट्ठा पढ़ा करते थे ऐसा स्वयं तुम ही बताते हो। तुम्हारे पुराने सहपाठी श्रीकृष्ण आज द्वारिका के नरेश हैं। अतः हे पतिदेव जब तुम श्रीकृष्णजी के पास द्वारिका जाओगे तो

द्वारिका नरेश अनाथों की रक्षा करने वाले नाथ श्रीकृष्णजी आपकी दरिद्रता को भी दूर कर देंगे।

अलंकार—इस पद में परिकर अलंकार है। लोचन कमल आदि में उपमा अलंकार आया है।

सिच्छक हौं सिगरे जग को तिय।
ताको कहा अब देति है शिक्षा॥
जो तप कै परलोक सुधारत।
संपति कै तिनके नहिं इच्छा॥
मेरे हिये हरि के पद-पंकज;
बार हजार लै देखु परिच्छा॥
औरनि को धन चाहिए बावरि।
ब्राह्मण को धन केवल भिक्षा॥१०॥

शब्दार्थ—सिच्छक=शिक्षा देने वाला, सिक्षक। सिगरे=सारे। पद-पंकज=चरण-कमल। परिच्छा=परीक्षा। बावरि=बावली, पगली। भिच्छा=भिक्षा।

अर्थ—पत्नी ने जब पति को द्वारिका जाने के लिए बाध्य करने की चेष्टा की तो सुदामा पत्नी से कहने लगे—हे पत्नी! मैं ब्राह्मण सारे संसार को शिक्षा देने वाला हूँ, तू शिक्षा देने की कोशिश क्यों कर रही है। श्रीकृष्ण जी के लिए तू जिन शब्दों का प्रयोग कर रही है मैं उन सबको जानता हूँ। परन्तु जो लोग तपस्या द्वारा इस लोक की चिन्ता न करके परलोक को सुधारते हैं उन्हें धन और अन्य सांसारिक सुखों की इच्छा नहीं होती। मुझे इस संसार के सुखों की अभिलाषा नहीं है और मेरे मन में तो भगवान के चरण-कमल स्थापित हैं। और मैं यह सब कुछ ऐसे ही नहीं कह रहा तू चाहे तो हजार बार परीक्षा करके भी देख ले। हे पगली स्त्री, ब्राह्मण को धन से क्या? धन तो अन्य लोगों के लिए आवश्यक है, ब्राह्मण का धन तो केवल प्राप्त की हुई भिक्षा ही है।

विशेष—कवि ने इस पद्य के द्वारा एक उच्च आदर्श वाले निरलोभी, अभिलाषाओं तथा आकांक्षाओं से रहित ब्राह्मण का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है। ब्राह्मण और धन-संपत्ति का कोई सम्बन्ध ही नहीं। इन दोनों में जितना

अन्तर होगा, ब्राह्मण की इच्छाएँ जितनी कम होंगी उतना ही वह ऊँचा भी होगा। उसके लिए तपस्या का जीवन ही सर्वप्रमुख है।

दानी बड़े तिहुँ लोकन में जग, जीवत नाम सदा जिनको लै।
दीनन की सुधि लेत भली विधि, सिद्धि करौ पिय मेरो मतौ लै।
दीनदयाल के द्वार न जात सो और के द्वार पै दीन ह्वै बोलै॥
श्री जदुनाथ से जाके हितू सो तिहूँपन क्यों कन मांगत डोलै॥११॥

शब्दार्थ—मतौ लै=बात मानकर। दीनदयाल=दीनों पर दया करने वाले। ह्वै=होकर। दीन=गरीब। हितू=मित्र, हितैषी, हितकारी। तिहूँपन=तीसरे पन, तीसरी अवस्था अर्थात् बुढ़ापे में भी। कन=अन्न के दाने।

अर्थ—अपने पति सुदामा के मुख से गर्वपूर्ण ज्ञान मिश्रित बातें सुनकर पत्नी कहने लगी हे स्वामी! द्वारिका के नाथ श्रीकृष्ण तीनों लोकों में सबसे बड़े महान् दानी हैं। समस्त संसार उनके नाम का आश्रय लेकर अर्थात् स्मरण करके ही जी रहा है। वे दीनों की भली भाँति चिन्ता करते हैं, अतः हे पतिदेव! मेरी बात मानकर द्वारिकापुरी के लिए चल पड़ो। यह बात सोचने की है जो परम दानी दीनों की रक्षा करने वाले के द्वार पर नहीं जाता वह दीन होकर अन्य लोगों के द्वार पर भिक्षा माँगता फिरता है। यदुवंश के नाथ श्रीकृष्ण समान जिसके सखा परममित्र तथा हितैषी हैं उसे बुढ़ापे में एक-एक के द्वार से भिक्षा नहीं माँगनी चाहिए। श्रीकृष्ण से सहायता लेने में कोई दोष नहीं मानना चाहिए।

छत्रिन के पन जुद्ध, जुवा, दल काजि चढ़े गज बाजिन ही।
वैस को वानिज और कृषी, प्रन सूद्र कौ सेवन साजन ही।
विप्रन कौ प्रन है जु यही, सुख सम्पत्ति सो कछु काज नहीं।
कै पढ़िवौ कै तपोधन है, कन माँगत ब्राह्मन लाज नहीं॥१२॥

शब्दार्थ—पन=प्रण, प्रतिज्ञा, कर्तव्य। जुद्ध=युद्ध, लड़ाई। जुवा=युवा, दूत। बाजिन=घोड़े। वैस=वैश्य, व्यापारी वर्ग। सेवन-साजन=सेवा करना। ब्राह्मन=ब्राह्मण की, ब्राह्मण को।

अर्थ—सुदामा ने अपनी पत्नी को समझाते हुए सभी (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) के कर्तव्य समझाते हुए कहा—कि क्षत्रिय का धर्म

(प्रण) सेना, हाथी, घोड़े, आदि सजाना तथा मदद करना और युद्ध है। वैश्य का धर्म व्यापार तथा खेती बाड़ी करना और शूद्र का कर्तव्य सबकी सेवा में लगा रहना ही है। ब्राह्मण का कर्तव्य यही है कि वह सुख तथा धन संपत्ति से कुछ भी सम्बन्ध न रखे। उसके लिए तपस्या रूपी धन ही सर्वोपरि है। उसका कर्तव्य पढ़ना-लिखना, चिंतन, मनन करना, और तपस्या रूपी धन संचय करना है। इसलिए अपनी निजी जीविका के लिए यदि ब्राह्मण भिक्षा माँगे तो इसमें लज्जा की कोई बात ही नहीं। ब्राह्मण अपने सामने उद्देश्य के रूप में संसार की सुख सामग्री नहीं वरन् तपस्या एकत्रित करता है।

कोदों सवां जुरतो भरि पेट, न चाहति हौं दधि दूध मिठौती,
सीत बितीत भयौ सिसियातहि, हौं हठती पै तुम्हें न हठौती॥
जो जनती न हितू हरि-सौं, तो काहे को द्वारिका पेलि पठौती॥
या घर ते कबहूँ न गयो पिय, टूटो तयौं अरु फूटी कठौती॥१३॥

शब्दार्थ—कोदों सवां—एक प्रकार की जंगली घास से निकाले हुए जंगली चावल। जुरतो=जुड़ता, मिलता प्राप्त होता, उपलब्ध होता। मिठौती=मिठाई। सीत बितीत=सर्दियाँ कटती हैं, गुजरती हैं। हौं=मैं। हठती=हठ करके रहती। पै=किंतु। पठौती=भेजती। पेलि=बल पूर्वक, जिद् करके। तयौ=तवा।

अर्थ—सुदामा ने अपने तर्क में जब ब्राह्मण के जीवन में केवल तप का महत्व ही बताया और धन का त्याग आवश्यक कहा तब उसकी पत्नी ने अपने पक्ष में तर्क देते हुए कहा कि आप जो कुछ भी कहते हैं यह सत्य है, परन्तु हमारे घर की दशा बिल्कुल ही और है यदि पेट भरने के लिए कोदों और सवां ही मिल जाते तो कोई बात नहीं थी मैं उनसे ही पेट भर लेती। अपने घर में तो वे भी पेट भरने के लिए उपलब्ध नहीं होते। मैं दूध, दही मिठाई की इच्छा ही नहीं करती। सर्दी के मौसम की ठण्ड को भी मैं ठिठुर कर बिता देती और कभी भी आपको द्वारिका श्रीकृष्ण के पास जाने के लिए विवश न करती। परन्तु यह जानकर ही कि हरि (श्रीकृष्ण) जैसा आपका सहपाठी, सखा तथा मित्र है, मैं आपसे श्रीकृष्ण के पास जाने के लिए आग्रह कर रही हूँ। हे प्यारे पतिदेव, हमारे घर में दरिद्रता का ऐसा

साम्राज्य है कि यहाँ तो ठीक ढंग का तवा और कठौती भी नहीं है, ऐसी नित्य प्रति काम में आनेवाली वस्तुएँ भी टूटी-फूटी ही हैं। ऐसी पीड़ित अवस्था से छुटकारा पाने के लिए ही मैं आपसे श्रीकृष्ण से मिलने को जाने के लिए बलपूर्वक आग्रह कर रही हूँ।

विशेष—"टूटा तयौ और फूटी कठौती" शब्दों द्वारा सुदामा के घर की दरिद्रता का वास्तविक चित्र उपस्थित किया गया है जो सामान्य पाठक के मन को झंझोड़ देने में सफल हुआ है।

छाँड़ि सबै जक तोहि लगि बक आठहु जाम यहै हठ ठानी।
जातहि दैहै लदाय लढ़ा भरि लैहौं लदाय यहै जिय जानी।
पैहैं कहाँ ते अटारी अटा जिनके बिधि दीन्हीं है टूटी सी छानी॥
जो पै दरिद्र लिख्यौ है ललाट तौ काहू पै मेटि न जात अजानी॥१४॥

शब्दार्थ—लगी जक=एक बात को बार-बार कहना, व्यर्थ की बक-बक करना। जाम=पहर। आठहु जाम=आठों पहर, चौबीसों घण्टे, दिन-रात। लढ़ा भरि=गाड़ी भरकर; बहुत ही ज्यादा। अजानी=भोली, अनजान, ज्ञान रहित, मूर्ख।

अर्थ—घर की दीन-हीन अवस्था का वर्णन पत्नी के मुख से सुनकर सुदामा क्रोध से भरकर बोले कि सब बातों को छोड़कर दिन-रात बार-बार इसी बात को कहती रहती है और मुझे द्वारिका भेजने की हठ ठान ली है। हर समय घर की दशा का वर्णन और मुझे यहाँ से कृष्ण के पास भेजने के अतिरिक्त और सभी कुछ तू भूल ही गई है। तेरे मन में यह बात घर कर गई है कि मेरे द्वारिका पहुँचते ही श्रीकृष्ण मुझे गाड़ियाँ भरकर माल दे देंगे और मैं बहुत-सा सामान सामग्री लेकर घर आऊँगा। ऐसा सोचकर लालच के वशीभूत होकर तू मुझे यहाँ से वहाँ जाने के लिए जिद्द कर रही है। परन्तु हे भोली अनजान स्त्री तू यह नहीं समझती कि भगवान् ने ही जिनके भाग्य में टूटी-फूटी झोंपड़ी लिख दी हो उन्हें ऊँची-ऊँची अटारियाँ और भवन कैसे मिल सकते हैं। यदि हमारे भाग्य में ही विधाता ने दरिद्रता और अभाव लिख दिया है तो वह किसी के मिटाए भी नहीं मिट सकता। भाग्य की निर्धनता दूर नहीं हो सकती। श्रीकृष्ण के पास जाया जाय या और किसी के पास। और यह सब दौड़-धूप करना व्यर्थ ही सिद्ध

होगा। इसलिए उचित है कि अपने भाग्य पर सन्तोष किया जाए और जीवन के दुखों को नत-मस्तक होकर सहन किया जाय।

विशेष—इस पद में भाग्यवादी, आत्म सन्तोषी ब्राह्मण सुदामा के दर्शन होते हैं जो मित्र के पास न जाकर जीवन भर दुःख भोगना और भाग्य से जो कुछ भी प्राप्त हो उसी में शान्त रहना ही अधिक श्रेयस्कर मानते हैं।

पूरन पैज करी प्रहलाद कौं खंभ सौं बाँधौ पिता जिहि बेरे।
द्रौपदी ध्यान धरयो जब ही तब ही पट कोट लगे चहुँ फेरे।
ग्राह ते छूटि गयन्द पिय ! है हरि कौ निहचै जिय मेरे।
ऐसे दरिद्र हजार हरैं वे कृपासिन्धु लोचन कोर के हेरे ॥१५॥

शब्दार्थ—पूरन = पूर्ण, पूरी। पैज = प्रतिज्ञा, वचन। जिहि बेरे = जिस समय, जब। पट = वस्त्र, कपड़े। कोट = कोटि, करोड़ों। ग्राह = मगरमच्छ। गयन्द = गज, हाथी। निहचै = विश्वास, भरोसा, निश्चय। लोचन कोर = आँखों का किनारा। हेरे = देखने से।

अर्थ—सुदामा के मुख से यह शब्द सुनकर कि भाग्य का लिखा कोई नहीं मिटा सकता उसकी पत्नी कहने लगी कि श्रीकृष्ण क्या नहीं कर सकते अर्थात् वे सब कुछ करने में समर्थ हैं। प्रह्लाद की रक्षा करने की अपनी प्रतिज्ञा को उन्होंने उस समय पूरा किया जबकि उसके पिता ने उसे खम्भे से बाँध दिया था। जब द्रौपदी का चीर हरण कौरवों की भरी सभा में होने लगा तो उसने अपनी लज्जा की रक्षा के लिए श्रीकृष्ण का ध्यान किया तो स्वयं श्रीकृष्ण ने चीर बढ़ाकर उसके चारों ओर चीर (वस्त्रों) का ढेर लगा दिया। जल में जब ग्राह ने गज को पकड़ लिया तब सहायता की पुकार सुनकर श्रीकृष्ण ने ही गज की रक्षा की थी। इसलिए हे स्वामी ! मेरे मन में अनाथों के नाथ श्रीकृष्ण पर पूर्ण विश्वास है कि वे हमारी भी सहायता करेंगे। मेरा मन मुझसे कह रहा है कि श्रीकृष्ण कृपा के ऐसे महान् सागर हैं कि अपनी थोड़ी सी दया-दृष्टि से असंख्य पीड़ितों के कष्ट दूर कर सकते हैं। आप उनके पास जाओ वे हमारे भी दुःख दूर करेंगे।

विशेष—इस पद द्वारा सुदामा की पत्नी की श्रीकृष्ण की कृपा में घोर निष्ठा वर्णित की गई है। प्रह्लाद, द्रौपदी और गज की कथाओं की

ओर संकेत करके उनके दयानिधान रूप पर प्रकाश डाला गया है। यह तीनों कथाएँ हिन्दू धर्म ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक मिल जाती हैं।

चक्कवै चौंकि रहे चकि से तहाँ भूले से भूप कहाँ लौं गिनाऊँ।
देव गंधर्व और किन्नर यच्छ से साँझ लौं देखे खरे जिहि ठाऊँ।
तें दरबार बिलोक्यों नहीं अब तोहि कहा कहिके समझाऊँ।
रोकिए लोकन के मुखिया तहं हौं दुखिया किमि पैठन पाऊँ॥१६॥

शब्दार्थ—चक्कवै=चक्रवर्ती राजा। चकिसे=चकित से, हैरान से। गन्धर्व और किन्नर=ऐसे देवता जो गाने और नाचने का कार्य करते हैं। भूप=राजा। भूले से=हैरान। बिलोक्यो=देखा। यच्छ=यक्ष। तैं=तूने। मुखिया=स्वामी।

अर्थ—पत्नी द्वारा आग्रहपूर्ण शब्दों को सुनकर सुदामा बोले कि श्रीकृष्ण का दरबार, राजमहल आदि तक मेरी पहुँच कैसे हो सकती है ? वहाँ तो कितने ही चक्रवर्ती, प्रतापी राजा हैरान से होकर खड़े रहते हैं और जो असंख्य राजा वहाँ इस प्रकार चुपचाप खड़े रहते हैं मानो रास्ता भूलकर वहाँ आ गए हों उनकी तो गिनती भी सम्भव नहीं है। जिन श्रीकृष्ण के द्वार पर सारा दिन सुबह से शाम तक गन्धर्व, किन्नर, यक्ष आदि अनेक देवता खड़े ही रहते हैं परन्तु द्वार के अन्दर नहीं जा सकते। ऐसा राजदरबार तो तूने देखा ही नहीं वह तो वर्णनातीत है मैं उसकी शोभा तुझे कैसे समझा सकता हूँ। उस दरबार के भीतर तो लोकों के स्वामी भी जा नहीं सकते, बाहर ही रुकना पड़ता है। द्वारिकाधीश के ऐसे दरबार में मैं दीन-हीन, दरिद्र भला कैसे जा सकता हूँ।

विशेष—इस पद में सुदामा जी ने अपनी पत्नी को श्रीकृष्ण के दरबार की शोभा तथा महानता बताते हुए अपना प्रवेश उसमें असम्भव बताकर वहाँ जाना व्यर्थ बताने की चेष्टा की है।

अलंकार—काव्यार्थपत्ति।

भूले से भूप अनेक खरे रहौ,
ठाडे रह्यौ तिमि चक्कवे भारी।
देव गन्धर्व और किन्नर यच्छ से,
रोके जे लोकन के अधिकारी॥

अन्तरजामी वै आपु ही जानि हैं,
मानो यहै सिख आजु हमारी।
द्वारिकानाथ के द्वार गये,
सबतें पहिले सुधि लैहैं तिहारी ॥१७॥

शब्दार्थ—अन्तरजामी=अन्तर्यामी, मन की बात जान जाने वाला। तिहारी=तुम्हारी। सुधि=खबर।

अर्थ—सुदामाजी ने जब श्रीकृष्ण के द्वार के भीतर प्रवेश पाने को ही दुष्कर कार्य बताया तब उनकी पत्नी कहने लगी कि चाहे श्रीकृष्ण के द्वार पर अनेकों राजा हैरान से, कुछ भूले से खड़े रहते हों और इसी तरह से बहुत से चक्रवर्ती राजा भी चाहे द्वार पर प्रवेश पाने की इच्छा से खड़े रहते हों। यह भी सत्य है कि लोकों के स्वामी भी अनेकों देवता, गन्धर्व, किन्नर और यच्छ आदि भी भीतर प्रवेश न पा सकते हों, उन्हें द्वार से बाहर ही रोक दिया जाता हो। परन्तु मेरी एक बात (शिक्षा) आज अवश्य मान लो, श्रीकृष्णजी अन्तर्यामी हैं, सब के मन की बात जानने वाले हैं अतः आप विश्वास करें कि द्वारिकानाथ कृष्ण के द्वार पर पहुँचते ही सबसे पहले वे आपकी ही सुधि लेंगे अर्थात् अपने पास बुला लेंगे।

विशेष—इस पद में सुदामा की पत्नी सुदामा के मन में व्याप्त संकोच को श्रीकृष्ण को अन्तर्यामी कहकर दूर करने का प्रयास करती है जिससे वह कोई आनाकानी किए बिना ही द्वारिका के लिए चल पड़ें।

"दीनदयाल को ऐसेई द्वार है दीनन की सुधि लेत सदाई।
द्रौपदी तें गज तें प्रहलाद तें, जानि परी न बिलम्ब लगाई।
याहि ते भावत मो मन दीनता, जो निबहै निबही जस आई।
जो ब्रजराज सों प्रीति नहीं, कहि काज सुरेसहु की ठकुराई ॥१८॥

शब्दार्थ—बिलम्ब=समय, देरी। भावन=अच्छा लगता है। निबहै=निर्वाह होगा। सुरेसहु=इन्द्र। ठकुराई=स्वामी होना, प्रभुता।

अर्थ—जब पत्नी ने श्रीकृष्ण के अन्तर्यामी होने के कारण श्रीकृष्ण द्वारा सबसे पहले ही सुदामा जी को दरबार में बुलाए जाने के विषय में कहते हुए आग्रहपूर्वक द्वारिका जाने के लिए कहा तो सुदामा जी ने कहा, हे प्रिये तुम सच ही कहती हो कि दीनों पर दया करने वाले श्रीकृष्ण का

द्वार ऐसा ही है जहाँ पर पीड़ितों, दीन, दुखियों की सुधि सदा ही ली जाती है। द्रोपदी की चीरहरण के समय लज्जा बचाने से, ग्राह से गज की रक्षा करने से तथा खंभ से प्रकट होकर प्रहलाद की रक्षा करने से तो यही भली भाँति विदित होता है कि दीनदयाल श्रीकृष्ण दीनों की रक्षा करने में कभी भी देर नहीं लगाते और इसी कारण से मेरे मन को भी दीनता अच्छी लगती है। इस तरह से मैं श्रीकृष्ण का दयापात्र हो सकूँगा। श्रीकृष्ण दीनानाथ हैं इसलिए मैंने अब तक दीनता, दरिद्रता का जीवन गुजारा है और यदि आगामी जीवन भी इसी दीनता से ही बीत जाए तो श्रेष्ठ है। इस संसार में वास्तविक बात तो श्रीकृष्ण से प्रेम ही है और यदि वह न हो तो इन्द्र का महान् पद भी व्यर्थ ही है।

अलंकार—परिकर तथा हेतु।

विशेष—सुदामा के उपरोक्त शब्दों में भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अगाध प्रेम का परिचय मिलता है जो एक निष्ठ, सच्चे भक्त का सर्वप्रमुख लक्षण है।

फाटे पट टूटी छानि खायो भीख माँगि आनि,
बिना जग्य विमुख रहत देव पित्रई।
वे हैं दीनबन्धु दुखी देखिके दयाल ह्वै हैं,
दैहैं कछु भलो सौ हौं जानति अगत्रई॥
द्वारिका लौं जात पिय! एते अलसात् तुम,
काहे को लजात भई कौन-सी विचित्रई।
जो पै सब जनम दरिद्र ही सतायो तो पै,
कौन काज आई है कृपानिधि की मित्रई॥१९॥

शब्दार्थ—पट=वस्त्र। जग्य=यज्ञ। पित्रई=बाप-दादा, अगत्रई=पहले से ही, आगे से ही। एते=इतने। अलसात=आलस्य करते हो।

अर्थ—श्रीकृष्ण के साथ सुदामा की मित्रता और अपने घर में व्याप्त दरिद्रता का वर्णन करते हुए सुदामा की स्त्री कहती है कि हे पतिदेव पहनने के कपड़े फट गये हैं। झोंपड़ी का छप्पर भी टूट गया है। घर में खाने को भी नहीं और मांग-मांग कर अन्न लाते हो और उसी पर जीवन का निर्वाह हो रहा है। घर में सामग्री के अभाव के कारण कभी यज्ञ आदि भी

नहीं किए इसलिए हमारे पितृगण और अन्य देवता लोग भी हमसे प्रसन्न नहीं वरन् अप्रसन्न और असन्तुष्ट ही रहते हैं। श्रीकृष्ण तो दीनों पर दया करने वाले दीनबन्धु दीनदयाल हैं तुम्हें देखते ही उनके मन में तुम्हारे लिए दया उपजेगी और तुम पर दया करेंगे। यह तो मैं पहले ही जानती हूं कि श्रीकृष्ण आपको देखते ही अच्छा और बहुत काफी ही देंगे। हे स्वामी आप द्वारिका जाते क्यों नहीं, वहाँ जाने में इतना आलस्य क्यों करते हो। वहाँ जाने में कोई ऐसी बुरी या विचित्र बात तो है ही नहीं कि आप जाने में लज्जा करते हैं। श्रीकृष्ण आपके बालक पन के साथी और सहपाठी हैं और मित्र के पास जाने में तो लज्जा की कोई बात नहीं है। दुख और कष्ट के समय तो सहायता के लिए मित्र के पास जाया ही जाता है। आप ही सोचें यदि जीवन भर अभाव और दरिद्रता ने ही पीड़ित रखा तो कृपा के सागर कृष्ण से आपकी मित्रता किस काम की ? उससे क्या लाभ होगा ?

अलंकार—विशेषोक्ति।

विशेष—इस पद में सुदामा की पत्नी सुशीला अपने दुखों का वर्णन, यज्ञादि न करने के कारण पितृ की असन्तुष्टि तथा कष्ट के समय मित्रता का उपयोग करने की बातें कहकर उन्हें द्वारिका जाने के लिए पुनः आग्रह करती है।

तैं तौ कही नीकी सुनि बात हित ही की यही,
रीति मित्रई की नित प्रीति सरसाइए।
मित्र कै मिले में चित्त चाहिए परस्पर,
मित्र कहूं जो जेंइए तौ आपहू जेंवाइए।
वे हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप,
तहाँ यहि रूप जाय कहा सकुचाइए।
सुख दुख दिन तो कटेही बनेंगे भूलि,
विपत्ति परे पै द्वार मित्र के न जाइए॥२०॥

शब्दार्थ—नीकी=अच्छी, उचित। मित्रई=मित्रता। प्रीति सरसाए=प्रीति अथवा मित्रता, प्रेम बढ़ाना चाहिए। समाज भूप=राजाओं का समाज, सभा। जेंइए=भोजन कीजिए। सकुचाइए=संकुचित होना,

लज्जा का अनुभव करना।

अर्थ—पत्नी के मुख से यह सब कुछ सुनकर सुदामा कहने लगे कि जो कुछ तूने कहा है सो तो ठीक ही है और हमारा हित भी इसी में है। मित्रता के लिए यह आवश्यक भी है कि मित्रता बढ़ती रहे प्रेम अधिक से अधिक होता रहे। जब मित्र, मित्र से मिले चित्त प्रसन्न तथा आनन्दित होना चाहिए तथा परस्पर प्रेम बढ़ता रहना चाहिए। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि यदि मित्र के घर भोजन किया जाय तो उसे अपने यहाँ भी भोजन कराना चाहिए। श्रीकृष्ण वे पहले वाले कृष्ण तो हैं नहीं ? आज वे महाराज हैं, राजाओं के राजा हैं राजाओं की सभा लगाकर बैठते हैं इसलिए अपनी इस दीन हीन दशा में जाकर न उन्हें लज्जित करना चाहिए और न स्वयं ही लज्जित होना चाहिए। अपने भाग्य में विधाता ने जो सुख और दुख के दिन लिख दिए हैं वे तो काटने ही पड़ेंगे परन्तु विपत्ति पड़ने पर दुःख के समय मित्र के द्वार पर कभी भी नहीं जाना चाहिए।

अलंकार—लोकोक्ति।

विशेष—इस पद में एक कहावत का लहारा लेकर द्वारिका जाना टालने की एक और चेष्टा सुदामा जी ने की है।

विप्र के भगत हरि विदित जगत बन्धु,
लेत सब ही की सुधि ऐसे महादानी हैं।
पढे हुए चटसार कही तुम कयौ बार,
लोचन अपार वे तुम्हें न पहिचानि हैं।
एक दीनबन्धु, कृपासिंधु, फेर गुरु बन्धु,
तुम सम कौन दीन जाकौ हिय जानि हैं।
नाम लेत चौगुनी गए ते द्वार सौगुनी,
देखत सहस गुनी प्रीति प्रभु मानि हैं॥२१॥

शब्दार्थ—विदित=सब जानते हैं, प्रसिद्ध है। चटसार=पाठशाला। कैयो=कितनी ही। लोचन=असंख्य नेत्र।

अर्थ—सुदामा के मुख से यह सुनकर कि विपत्ति के समय मित्र के यहाँ नहीं जाना चाहिए उसकी पत्नी कहने लगी कि सारा संसार जानता है कि श्रीकृष्ण ब्राह्मणों के भक्त और दीनों का पालन, पोषण तथा रक्षा

करनेवाले हैं। वे ऐसे बड़े दानी हैं कि सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति का ध्यान रखते हैं फिर स्वयं आपने ही तो कई बार कहा है कि वे आपके साथ ही एक ही पाठशाला में पढ़ते रहे हैं। श्रीकृष्ण जी अन्तर्यामी हैं, बड़े असंख्य नेत्रों से सब कुछ देखते हैं, घट-घट की जानने वाले हैं इसलिए यह नहीं हो सकता कि आप उन्हें मिलने जाएं और वे आपको न पहचानें, वे अवश्य ही आपको जान जाएंगे। सर्वप्रथम वे दीनों की रक्षा करने वाले दीनबन्धु, दीनानाथ कहलाते हैं, दया के सागर हैं यह सब होने के साथ-साथ एक ही सन्दीपनि गुरु के पास शिक्षा पाने के कारण वे आपके गुरुभाई भी हैं। आप सबसे दीन हैं। आप जैसा और कौन दीन दुःखी होगा जिसे वे अपने मन में नहीं जानेंगे। श्रीकृष्ण का नाम लेने से वे चार गुना प्रेम मानते हैं परन्तु द्वार पर जाने से उनकी प्रीति सौ गुना हो जाती है। आप उनके द्वार पर जाएंगे तो आपको देखकर उनकी प्रीति हजारों गुना बढ़ जाएगी यह निश्चय ही मानिए।

विशेष—इस पद्य में सुदामा की पत्नी ने निश्छल और सच्चे प्रेम का वास्तविक गुण बताया है।

अलंकार—समुच्चय, सार और परिकर हैं।

प्रीति में चूक न है उनके हरि मो मिलि हैं उठि कण्ठ लगाइकै।
द्वार गए कछु दैहैं पै दैहैं वै द्वारिकानाथजू हैं सब लायकै॥
या विधि बीति गए पन द्वै, अब तौ पहुँचौ विरधापन आइकै।
जीवन केतौ है जाके लिये हरिसौं अब होऊँ कनावड़ौ जाइकै॥२२॥

शब्दार्थ—चूक=कमी। या विधि=इसी प्रकार। कछु दैहैं पै दैहैं=कुछ न कुछ तो अवश्य ही देंगे। विरधापन=बुढ़ापा, वृद्धावस्था। कनावड़ौ=कृतज्ञ, आभारी।

अर्थ—सुदामा जी पत्नी की बात सुनकर बोले कि निस्संदेह श्रीकृष्ण के प्रेम में कोई कमी की गुंजाइश नहीं। उनका स्नेह बहुत ही अधिक है। जब मैं वहाँ जाऊँगा तो श्रीकृष्ण बड़े प्रेम से उठकर मुझे गले लगाकर मुझसे मिलेंगे। द्वारिकानाथ श्रीकृष्ण जी सभी प्रकार से सामर्थ्य रखते हैं अतः वहाँ जाऊँ तो अवश्य ही मुझे कुछ न कुछ देंगे ही परन्तु जीवन के दो पन अर्थात् दो अवस्थाएँ बाल्यावस्था और युवास्था इसी दीन-हीन अवस्था में

ही बीत गए हैं और अब बुढ़ापा आ गया है, अब कितना जीवन बाकी बचा है अर्थात् अब तो थोड़ा-सा जीवन बाकी बचा है इसलिए द्वारिकानाथ के द्वार पर जाकर आभारी नहीं बनना चाहिए।

विशेष—दीन होते हुए भी सुदामा अपने आत्म-सम्मान को छोड़ना उचित नहीं समझते।

हूजै कनावड़ौ बार हजार लौं,
जो हितू दीन दयाल सो पाइये।
तीनहुं लोक के ठाकुर वे,
तिनके दरबार न जात लजाइये।
मेरी कही जिय में धरिके पिय,
भूलि न और प्रसंग चलाइये।
और के द्वार सों काज कहा पिय,
द्वारिकानाथ के द्वारे सिधाइये ॥२३॥

शब्दार्थ—ठाकुर=स्वामी। सिधाइये=जाइए, प्रस्थान कीजिए।

अर्थ—जब सुदामा ने अपनी पत्नी से यह कहा कि वे द्वारिका जाकर जीवन के अन्तिम दिनों में श्रीकृष्ण का आभार नहीं लेना चाहते तो उनकी पत्नी कहने लगी कि यदि श्रीकृष्ण समान दीनबन्धु, दीनदयाल मित्र मिले तो एक बार नहीं हजार बार भी आभारी हो जाना चाहिए इसमें कोई ऐसी हरज की बात नहीं है। हे स्वामी जो तीनों लोकों के स्वामी हैं उनके दरबार में जाने में लज्जा या संकोच नहीं करना चाहिए। अतः मेरी इस बात को ध्यान में रखकर इस पर विचार करो और कोई दूसरी बात मन में न आने दो। हे पतिदेव द्वार-द्वार पर जाने का विचार छोड़ दो अब दूसरे द्वारों पर जाने से क्या अभिप्राय अन्य सभी द्वार छोड़कर श्रीकृष्ण के द्वार पर ही आप जाओ। वे अवश्य ही आपकी स्थिति पर दया करेंगे।

द्वारिका जाहु जू द्वारिका जाहु जू आठहुँ जाम यहै जक तेरे,
जौं न कह्यौं करिए बडौ दुख, जैए कहां अपनी गति हेरे।
द्वार खरे प्रभु के छरिया तहँ भूपति जान न पावत नेरे,
पाँच सुपारी तैं देखु विचारि कै भेंट को चारि न चाउर मेरे ॥२४॥

शब्दार्थ—जक=धुन, रट। गति=दशा, स्थिति। छरिया=द्वार-

पाल, दरबान । हेरे=देखे, समझे । नेरे=पास, निकट, नज़दीक । चाउर=चावल ।

पत्नी द्वारा बार-बार हठ करने पर सुदामा बिगड़ गए । फिर एक बार द्वारिका जाने से बचने की चेष्टा करते हुए बोले कि तूने आठों पहर चौबीस घण्टे यही रट लगाई हुई है कि द्वारिका जाओ, द्वारिका जाओ । यदि मैं तेरा कहना नहीं मानता तो तू रूठ जाती है, तुम्हें दुःख होता है । मेरी दशा भी कैसी खराब है । इस दीन-हीन दशा में जाए भी तो कहाँ जाए ? कुछ सूझता ही नहीं । श्रीकृष्ण के द्वार पर हर समय द्वारपाल द्वार की रक्षा के लिए खड़े रहते हैं । उस दरबार में तो राजा भी नहीं जा सकते, मैं तो हूँ ही किस गिनती में । मैं वहाँ अन्दर कैसे जा सकता हूँ ? मित्र के पास जाने तथा उसे भेंट करने के लिए भी कुछ चाहिए । अपने घर में पाँच सुपारी और चार दाने चावल तक भी नहीं हैं ऐसी स्थिति में मैं वहाँ कैसे जा सकता हूँ, तू स्वयं ही सोच ।

विशेष—प्राचीन काल में जब ब्राह्मण राज-दरबार में जाया करते थे तो भेंट के लिए सुपारी चावल साथ ले जाया करते थे । इस बहाने का सहारा लेकर सुदामा द्वारिका जाने से बचने की कोशिश करते हैं ।

यह सुनिके तब ब्राह्मनी, गई परौसिन पास ।
पाव सेर चाउर लिए, आई सहित हुलास ।।२५।।

शब्दार्थ—हुलास=प्रसन्नतापूर्वक ।

अर्थ—पति के मुख से भेंट की बात सुनकर सुदामा की पत्नी यह सोचकर कि राजा की भेंट करने के लिए घर में चार चावल भी नहीं हैं, पड़ौसिन के पास गई और उससे एक पाव चावल माँगकर बड़ी प्रसन्न चित्त वापिस आई ।

सिद्धि करी गनपति सुमिरि, बांधि दुपटिया खूँट ।
मांगत खात चले तहाँ, मारग बाली-बूट ।।२६।।

शब्दार्थ—गनपति=गणेश । दुपटिया=दुपट्टा, गले में डालनेवाला कपड़ा । खूँट=किनारा, छोर, पल्ला, कोना । बाली-बूट=गेहूँ जौ की बालें और चने के होले ।

अर्थ—पत्नी ने चावल आदि लाकर दिए तो सुदामा ने उन्हें अपने

दुपट्टे के कोने में बाँध लिया और गणेशजी की स्तुति करके द्वारिका की ओर चल पड़े। द्वारका जी की ओर जाते हुए वे गेहूँ, जौ आदि माँगते और खाते हुए चले।

तीन दिवस चलि विप्र के, दूखि उठे जब पांय।
एक ठौर सोए कहूं, घास पयार बिछाय ॥२७॥

शब्दार्थ—दिवस=दिन। पयार=पयाल या बिछाने वाली पराली घास।

अर्थ—तीन दिन तक लगातार चलते रहने से जब ब्राह्मण सुदामा के पाँव दुखने लगे तो वे एक जगह पर घास पयाल आदि बिछाकर सो गए।

अन्तरजामी आपु हरि, जानि भगत की पीर।
सोवत लै ठाढो किया, नदी गोमती तीर ॥२८॥

अर्थ—भगवान् कृष्ण स्वयम् ही घट-घट की जानने वाले हैं अन्तर्यामी हैं, अपने भक्त सुदामा की पीड़ा को जानकर उन्होंने उसे सोते को ही गोमती नदी के किनारे पर पहुँचा दिया।

विशेष—इस दोहे में श्रीकृष्ण के अन्तर्यामी, दया वाले रूप को प्रस्तुत किया गया है।

प्रातः गोमती दरस तें अति प्रसन्न भो चित्त।
विप्र यहाँ असनान करि, कीन्हों नित्त निमित्त ॥२९॥

शब्दार्थ—दरस=दर्शन। भो=हुआ। असनान=स्नान, नहाना। नित-निमित्त=नैमित्तिक कार्य।

अर्थ—जागने पर सुदामा ने गोमती नदी का दर्शन किया और बड़े प्रसन्न हुए। ब्राह्मण सुदामा ने वहाँ पर स्नान किया और तदनन्तर नैमित्तिक कार्य-संध्या-तर्पण, ध्यान-पूजन, पाठ आदि किये।

विशेष—इसमें सुदामा की कर्मकाण्डी-प्रवृत्ति का परिचय दिया गया है।

भाल तिलक धि सिकै दियो, गही सुमिरनी हाथ।
देखि दिव्य द्वारावती, भयो अनाथ-सनाथ ॥३०॥

शब्दार्थ—सुमिरनी (सुमरनी)=नाम जपने की सत्ताइस दानों की छोटी माला। दिव्य=अलौकिक, प्रकाशमान, चमकीला, सुन्दर। द्वारा-

वती=द्वारकापुरी।

अर्थ—सुदामा ने मस्तक पर तिलक लगाया, हाथ में सुमरनी (जप-माला) ली और द्वारकापुरी के दर्शन करके वह (सुदामा) अनाथ अपने को सनाथ समझने लगा मानो द्वारिकापुरी के दर्शन कर उसे सब कुछ प्राप्त हो गया।

दीठि चकाचौंधि भई देखत सुबर्नमई,
एक तें सरस एक द्वारिका के भौन हैं।
पूछे बिन कोऊ काहू सों न करै बात,
देवता से बैठे सब साधि साधि मौन हैं॥
देखत सुदामा, धाय पुरजन गहे पाँय,
कृपा करि कहौ विप्र कहां किन्हौं गौन हैं।
"धीरज अधीर के, हरन परपीर के,
बताओ बलबीर के भवन यहां कौन हैं॥३१॥

शब्दार्थ—दीठि=दृष्टि, नजर। चकचौंध गई=चुँधिया गई। सुवर्न मई=सोने से बनी हुई। पुरजन=नागरिक, नगरवासी। सुधर=सुन्दर। भौन=भवन, मन्दिर। परपीर=दूसरे का कष्ट। गौन=गमन, गवन, जाना। बलवीर=श्रीकृष्ण।

अर्थ—द्वारिकापुरी की ओर दृष्टि जाते ही वहाँ पर एक से एक सुन्दर भवन को देखकर सुदामा की आँखें चुँधिया गईं। वहाँ के निवासी देवताओं की तरह से शान्त मुद्रा में बैठे हुए हैं मानो मौन धारण किया हुआ हो। बिना कारण वे व्यर्थ की बातचीत नहीं करते, बड़े सभ्य दिखाई देते हैं। सुदामाजी को देखते ही नगरवासी दौड़ पड़े और उनके पैर पकड़ कर नम्रता से पूछने लगे कि हे ब्राह्मण देवता, कृपया यह तो बताओ कि आप कहाँ जा रहे हैं? यह सुनकर सुदामा जी बोले कि दुखी तथा अधीर लोगों को धैर्य देने वाले, दूसरों के दुख को दूर करने वाले श्रीकृष्ण के भवन कौन से हैं, मुझे वहीं जाना है।

विशेष—नगरवासियों में शान्त भाव, सभ्यता के साथ-साथ साधु तथा ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धा तथा प्रेम का परिचय दिया है। जिस नगर के नगरवासी ऐसे महान् आदर्शों वाले हों वहां का राजा कितना महान् हो

सकता है यह भी इस छन्द से पता लग जाता है।

अलंकार—पूर्णोपमा अलंकार है।

दीनि जानि काहू पुरुष, कर गहि लीन्हो आय
दीन द्वार ठाढ़ो कियो, दीन बन्धु के जाय ॥३२॥

अर्थ—किसी व्यक्ति ने उसे दीन समझ कर उसका हाथ पकड़ा और दीनों पर दया करने वाले श्रीकृष्ण के द्वार पर ले जाकर खड़ा कर दिया।

द्वारपाल द्विज जानि कै, कीन्हों दण्ड प्रनाम।
विप्र कृपा कर भाषिए सकुल आपनो नाम ॥३३॥

शब्दार्थ—द्विज=ब्राह्मण। भाषिए=कहिए। बोलिए, बताइए।

अर्थ—जब द्वारपाल ने सुदामा जी को देखा तो ब्राह्मण समझ कर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया और बोला—हे ब्राह्मण महाराज अपना कुल और नाम बताइए।

नाम सुदामा कृष्न हम, पढ़े एकई साथ।
कुल पांडे ब्रजराज सुनि, सकल जानिहैं गाथ ॥३४॥

अर्थ—द्वारपाल के पूछने पर सुदामा जी ने कहा कि मेरा नाम सुदामा है और मैं और कृष्ण इकट्ठे पढ़ते रहे हैं। मेरा गोत्र पांडे है और इतना सुनकर ही श्रीकृष्ण जी बाकी सब कुछ समझ जाएँगे।

द्वारपाल चलि तहाँ गयो, जहाँ कृष्ण जदुराय।
हाथ जोडि ठाड़ौ भयो,बोल्या सीस नबाय ॥३५॥

अर्थ—यह सुनकर 'द्वारपाल' उस स्थान पर पहुँचा जहां 'यदुकल शिरोमणि' श्रीकृष्ण जी बैठे थे। श्रीकृष्ण के सामने जाकर वह खड़ा हो गया और मस्तक नवा कर बोला—

सीस पगा न झगा तन में प्रभु,
जानै को आहि बसे केहि ग्रामा,
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु,
पांय उपानहु को नहीं सामां,
द्वार खड़ौ द्विज दुर्बल एक,
रह्यौ चकि सों बसुधा अभिरामा।

पूछत दीनदयाल को धाम,
बतावत आपनो नाम सुदामा ॥३६॥

शब्दार्थ—पगा=पगड़ी, पाग। झंगा=अंगरखा, कुर्ता जैसा। उपानहु=जूती। बसुधा=पृथ्वी। आहि=है। अभिरामा=सुन्दर। लटी-दुपटी=फटा दुपट्टा।

अर्थ—आये हुए सुदामा की दीन-हीन स्थिति का श्रीकृष्ण से वर्णन करता हुआ द्वारपाल कहता है कि हे भगवान् एक आदमी जिसके सिर पर न पगड़ी है और न शरीर पर अंगरखा ही है। पता नहीं वह कौन है और कहाँ का रहने वाला है? धोती फटी हुई है और एक फटा मैला दुपट्टा उसने डाल रखा है और उसके पांव में जूते भी नहीं हैं। इस प्रकार का एक दुर्बल, दीन ब्राह्मण द्वार पर खड़ा हुआ इस नगर की सुन्दर भूमि को आश्चर्य-चकित होकर देख रहा है। वह दीनबन्धु श्रीकृष्ण का घर पूछ रहा है और पूछने पर अपना नाम सुदामा बताता है।

बोल्यौ द्वारपालक 'सुदामा नाम पांडे' सुनि,
छांड़े राजकाज ऐसे जी की गति जानै को?
द्वारिका के नाथ हाथ जोरि धाय गहे पांय,
भेंटे लपटाय हिय ऐसे दुख मानै को?
नैन दोऊ जलभरि पूछत कुशल हरि
बिप्र बोल्यो बिपदा में मोहि पहिचानै को?
जैसी तुम कीन्ही तैसी करै को कृपा के सिंधु,
ऐसी प्रीति दीनबन्धु! दीनन पै आनै को॥३७॥

शब्दार्थ—छांड़े=छोड़ दिये। आनै को=करता है।

अर्थ—द्वारपाल ने आकर जैसे आने वाले ब्राह्मण का नाम "सुदामा पांडे कहा, तो इसे सुनते ही श्रीकृष्ण ने राजकार्य तो छोड़े दिया और अपने दोनों हाथ जोड़कर उठ दौड़े। उस समय उनके मन की दशा कैसी थी इसका वर्णन कौन कर सकता है। सुदामा के पास पहुंचते ही श्रीकृष्ण ने उनके पांव पकड़ लिए और हृदय से मिलकर भेंट की। अपने मित्र सुदामा की दुःख की स्थिति को श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कौन जान सकता है। अपनी दोनों आंखों में प्रेम के अश्रु भरकर श्रीकृष्ण जी ने सुदामा की कुश-

लता का समाचार पूछा। सुदामा जी बोले हे प्रभू, विपत्ति के समय मुझे आपके सिवा और कौन पहचान सकता है। वह फिर बोले, हे दया के सागर, जैसी दया आपने की है ऐसी और दूसरा कौन कर सकता है। जैसी कृपा तथा प्रेम आपने मुझसे किया, हे दीनबन्धु ऐसा प्रेम और कोई नहीं कर सकता।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

लोचन पूरि रहे जल सों प्रभु दूर ते देखत ही दुःख मेट्यो।
सोच भयो सुर नायक के क्रल्पद्रुम के हिय मांझ खखेट्यो।
कंप कुबेर हिए सरसों परसे पग सुमेर समेट्यो।
रंक ते राउ भयौ तब ही जबहिं भरि अंक रमापति भेंट्यो ॥३८॥

शब्दार्थ—सुरनायक=इन्द्र। कल्पद्रुम=सभी कामनाओं को पूरा करने वाला स्वर्ग का वृक्ष। खखेट्यो=खटका, चिन्ता, व्याकुलता। हिय मांझ=हृदय में। परसे=स्पर्श से ही। कम्प=कांपने लगा। समेट्यो=सिमिटना, संकुचित होना। सुमेरु=सोने का पर्वत। रंक=निर्धन, गरीब। राउ=राजा। अंक=गोदी। रमा=लक्ष्मी।

अर्थ—सुदामा की दरिद्र अवस्था को देखकर श्रीकृष्ण की आंखों में आंसू आ गए। भगवान् ने दूर से देखकर ही सुदामा के सारे दुःख दरिद्र को समाप्त कर दिया। यह देखकर देवताओं के राजा महाराज इन्द्र मन में सोचने लगे कि श्रीकृष्ण कहीं मेरा राज्य सिंहासन ही सुदामा को भेंट न कर दें। कल्पद्रुम को अपनी चिंता हुई। धन के देवता कुबेर का हृदय भी धक्-धक् करने लगा। जैसे ही श्रीकृष्ण ने सुदामा जी के पैरों को हाथ लगाया सुमेरु पर्वत भी इस भय से कहीं मुझे ही न दान कर दें संकुचित होने लगा। वास्तव में तो सुदामा भिखारी से राजा तो तभी हो गये थे जब श्रीकृष्ण ने उन्हें अपने गले से लगा कर भेंट की थी।

अलंकार—चंचलातिशयोक्ति और परिकर अलंकार हैं।

भेंटि भली विधि विप्र सों, करि गहि त्रिभुवन राय।
अन्तःपुर को ले गए, जहां न दूसर जाय ॥३९॥

शब्दार्थ—अन्तःपुर=रानियों का निवास महल। दूसर=दूसरा।

अर्थ—अपने मित्र सुदामा से प्रेम पूर्वक मिलकर श्रीकृष्ण उन्हें हाथ से

पकड़कर अन्तःपुर में ले गए जहाँ कोई दूसरा नहीं जा सकता।

मनि मंडित चौकी कनक, ता ऊपर बैठाय।
पानी धर्‌यौ परात में, पग धोवन को लाय ॥४०॥

अर्थ—मणियों से जड़ी हुई सोने की चौकी के ऊपर सुदामा जी को बैठाया गया और उनके पाँव धोने के लिए पानी परात में लाया गया।

राजरमनि सोरह सहस, सब सेवकन समेत।
आठौं पटरानी भईं, चकित चितैं यह हेत ॥४१॥

शब्दार्थ—राजरमनियाँ=राजरानियाँ। सहस=सहस्र, हजारों। पटरानी=महारानी, बड़ी रानी, प्रधान रानी। हेत=प्रेम।

अर्थ—सोलह हजार रानियाँ, सारे नौकर-चाकर और आठों पटरानियाँ श्रीकृष्ण जी के सुदामा से इस प्रकार के प्रेम को देखकर हैरान हो गए।

जिनके चरनन को सलिल, हरत जगत् सन्ताप।
पाँय सुदामा विप्र के, धोवत ते हरि आप ॥४२॥

शब्दार्थ—सलिल=जल। सन्ताप=दुःख, पीड़ा, कष्ट।

अर्थ—जिन श्रीकृष्ण के चरणों का जल सारे संसार के दुःखों को दूर करता है वही कृष्ण ब्राह्मण सुदामा के चरणों को स्वयं धो रहे हैं।

विशेष—इस दोहे में श्रीकृष्ण के प्रेमी सरल हृदय के दर्शन होते हैं।

ऐसे बेहाल बिबाइन सों पग कंटक जाल लगे पुनि जोये,
हाय महा दुख पायौ सखा, तुम आये इतै न कितै दिन खोये।
देखि सुदामा की दीन दसा करुना करिकै करुनानिधि रोये,
पानी परात कौ हाथ छुओ नहिं नैनन के जल सों पग धोये ॥४३॥

शब्दार्थ—बेहाल=बुरा हाल, बुरी दशा। कंटक जाल=अगिणत कांटे। जोये=देखकर।

अर्थ—श्रीकृष्ण जी ने सुदामा जी के पाँव धोने के लिए जल मंगवाया। पाँव धोने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि सुदामा जी के पैरों की बिबाइयों की बुरी दशा देखी। पैरों में काँटे भरे हुए हैं। उनकी इस बुरी दशा को देखकर कृष्ण जी बोले मित्र तुमने वास्तव में बड़ा कष्ट उठाया है। तुमने इतने दिन कहाँ दुःख में ही बिता दिए पहले ही इधर क्यों न आ गए। सुदामा

की दीन-हीन दशा को देखकर दीनों पर सदा ही दया करने वाले, दया के सागर श्रीकृष्ण जी स्वयं ही रोने लगे। उनकी आँखों से आँसुओं की ऐसी झड़ी लगी, इतने अधिक आँसू बहे कि परात में पड़ा हुआ पानी तो हाथ से छुआ भी नहीं वरन् उनकी आँखों से ही आँसुओं के रूप में इतना जल बहा कि सुदामा जी के चरण धुल गए।

विशेष—इस छन्द में प्रेम अथवा करुणा का उच्चतर रूप दिखाई देता है।

धोय पाँय पट पीत सौं, पोंछत हैं जदुराय।
सतभामा सों यों कही करो रसोई जाय ॥४४॥

शब्दार्थ—पट-पीत=पीला वस्त्र, पीताम्बर।

अर्थ—श्रीकृष्ण जी ने सुदामा के पैर धोने के पश्चात् उन्हें पीताम्बर से पोंछा और सत्यभामा से कहा कि सुदामा जी के लिए भोजन बनाए।

तंदुल तिय दीन्हें हते, आगे धरियौ जाय।
दैखि राज संपति बिभौ, दे नहिं सकत लजाय ॥४५॥

शब्दार्थ—तन्दुल=चावल। बिभौ=वैभव, ऐश्वर्य।

अर्थ—श्रीकृष्ण से मिलने के समय भेंट करने के लिए सुदामा जी की पत्नी ने उन्हें चावल (तन्दुल) दिए थे परन्तु यहाँ द्वारिकापुरी के उनके ठाठ बाट तथा राजसी वैभव को देखकर वे संकोच करने लगे और चावल भेंट न कर सके।

अन्तरजामी आपु हरि, जानि भगत की रीति।
सुहृद सुदामा विप्रसों, प्रगट जनाई प्रीति ॥४६॥

शब्दार्थ—अन्तरजामी=अन्तर्यामी। सुहृद=मित्र, प्यारा।

अर्थ—श्रीकृष्ण अन्तर्यामी हैं और अपने भक्त के हृदय की बात जानते हैं अतः अपने परम मित्र सुदामा के मन की दशा तथा स्थिति को समझकर अपना प्रेम इस प्रकार प्रदर्शित करने लगे।

कछु भाभी हमको दियो, सो तुम काहि न देत।
चाँपि पोटरी काँख में, रहौ कहौ केहि हेत ॥४७॥

शब्दार्थ—चांपि=दबाकर। केहि हेत=किस लिए।

अर्थ—कृष्णजी ने सुदामा से पूछा कि हे मित्र भाभी ने जो कुछ भी

मेरे लिए भेजा है, उसे तुम मुझे क्यों नहीं देते। बताओ तो सही इस पोटली को बगल में किस लिए दबाए हुए हो।

आगै चना गुरु मातु दए ते लए तुम चाबि हमें नहिं दीने।
स्याम कह्यौ मुसकाय सुदामा सौं चोरी की बानि में हू जु प्रबीने॥
पोटरी काँख में चाँपि रहे तुम खोलत नाँहि सुधा रस भीने।
पाछली बानि अजौं न तजी तुम तैसेई भाभी के तन्दुल कीने॥४८॥

शब्दार्थ—बानि=आदत। प्रबीने=कुशल, चतुर, प्रवीण। सुधा-रस भीने=अमृत रस में लिप्त।

अर्थ—फिर श्री कृष्ण ने व्यंग करते हुए सुदामा से कहा कि चोरी की आदत तो तुम्हारी बड़ी पुरानी आदत होने के कारण तुम इसमें बड़े कुशल हो, बालकपन में भी जब हम दोनों सन्दीपनि के पास अध्ययन करते थे तब भी एक बार गुरु-माता ने चने दिए थे जो तुम हमें हमारे हिस्से के दिए बिना ही अकेले चोरी से ही चबा गए थे और अब भी तुम्हारी इच्छा कुछ ऐसी ही है। अमृत-रस युक्त चावलों को अब भी तुम पोटली में बाँधे हुए अपनी काँख में दबाए हुए हो और मुझसे छिपा रहे हो। तुम्हारी चोरी की आदत छूटी नहीं। यही कारण है कि हमारी भाभी के दिए हुए चावलों को गुरु-माता के दिए हुए चनों की भाँति अकेला ही खा जाना चाहते हो। इसी-लिए कांख में छुपाए हुए हो।

विशेष—'आगे-चना गुरु-मात दए' शब्दों में कृष्ण सुदामा की बाल्य-काल की एक घटना पर प्रकाश पड़ता है। जब वे सन्दीपनि गुरु के पास दोनों ही इकट्ठे पढ़ते थे। गुरु माता ने उन्हें बन से लकड़ी लाने के लिए कहा। उन्हें बन में भूख लगने पर खाने के लिए कुछ चने भी माता ने दे दिए। बन में दोनों बिछुड़ गये। सुदामा के पास चने रह गए जो उन्होंने भूख लगने पर सारे स्वयम् ही खा लिए। आश्रम लौटने पर इसका भेद खुला। वर्षों बाद श्रीकृष्ण ने पुनः उसी घटना की ओर इशारा करके चावल माँगे हैं।

इस पद्य में हास्य व्यंग्य की अच्छी व्यंजना हुई है।

खोलत सकुचत गाँठरी, चितवत हरि की ओर।
जीरन पट फटि छुटि परे, बिखरि गए तेहि ठौर॥४९॥

अर्थ—श्रीकृष्ण की ओर देखते हुए सुदामाजी चावलों की पोटली को संकोच से खोलने लगे। पोटली का कपड़ा बड़ा पुराना था। इसलिए वह फट गया और चावल वहीं पर बिखर गए।

विशेष—'जीरन पट फटि छुटि परे' में कवि ने सुदामा की गरीबी की चरम सीमा दिखा दी है।

एक मुठि हरि भरि लई, लीन्हीं मुख में डारि।
चबत चबाऊ करन लगे, चतुरानन त्रिपुरारि ॥५०॥

शब्दार्थ—चबाऊ=बातचीत, चर्चा। चतुरानन=ब्रह्मा। त्रिपुरारी =त्रिपुर राक्षस को मारने वाले शिवजी।

अर्थ—बिखरे हुए चावलों में से हरि ने एक मुट्ठी भरकर मुँह में डाल ली और चबाने लगे। श्रीकृष्णजी के इस चावल चबाने की चर्चा ब्रह्मा और शिव आदि देव भी करने लगे।

काँपि उठी कमला मन सोचत 'मोसों कहा हरि कौ मन औको'
रिद्धि कंपीं सब सिद्धि कंपीं नव-निद्धि कंपीं बम्हना यह धौंको ?
सोच भयो सुर नायक को जब दूसरी बार लियो भरि झौंको।
मेरु डर्‌यो बकसे जनि मोहि कुबेर चबावत चाउर चौंको ॥५१॥

शब्दार्थ—कमला=लक्ष्मी। औको=उकता गया, फिर गया, ऊब गया। रिद्धि=लाभ या वृद्धि करनेवाली देवियाँ। बम्हना=ब्राह्मण। सिद्धि=अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, ईशित्व, वशित्व, नाम की कार्य में सफलता देनेवाली सिद्धियाँ मानी गई हैं।

निद्धि—पद्म, महापद्यम, शं, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कन्द, नील और खर्व नाम की नौ निद्धियाँ मानी जाती हैं।

झौंको=मुट्ठी भर कर मुंह में डालना या फांकना। मेरु=सुमेरु पर्वत। बकसे=बखशीश देना, दे डालना। जनि=नहीं। कुबेर=धन, सम्पत्ति का स्वामी। नह नायक=राजा इन्द्र।

अर्थ—सुदामा भेंट के लिए अपने साथ पाव सेर चावल लाये थे। श्रीकृष्ण ने चावल लेकर एक मुट्ठी अपने मुंह में डाल ली और चावलों को चबाना आरंभ कर दिया। वे चावल चबा रहे थे और दूसरी ओर धन धान्य, सुख, ऐश्वर्य सभी कुछ सुदामा जी के घर जा रहा था इसका स्वयं

सुदामा जी को भी पता नहीं था। इस प्रकार धन जाता देखकर लक्ष्मी जी कांपने लगीं, उनको चिन्ता हो गई कि श्रीकृष्ण क्या मुझसे रूठ गये हैं, या उनका मन मुझसे भर गया है अथवा फिर गया है कि इस प्रकार से मुझे अपने से दूर कर रहे हैं और सुदामा के यहाँ भेज रहे हैं? भगवान कृष्ण के इस दयावान रूप को देखकर सभी सिद्धियाँ (आठों सिद्धियाँ) सभी (नौ) ऋद्धियाँ व्याकुल होकर काँपने लगीं। वे सब सोचने लगीं कि यह ब्राह्मण कौन है जिस पर दयावान होकर श्रीकृष्ण सभी कुछ उसे दिये जा रहे हैं। जब भगवान दूसरी बार चावल मुट्ठी में भरकर मुंह में डालने लगे तो देवताओं के राजा महाराज इन्द्र को चिन्ता हुई कि श्रीकृष्ण क्या कर रहे हैं। सोने का सुमेरु पर्वत भी इस भय से कि कहीं भगवान कृष्ण आज मुझे ही दान न कर दें डरने लगा और धन का देवता कुबेर श्रीकृष्ण को चावल चबाते हुए देखकर चौंक पड़ा कि आज तो शायद भगवान मेरा सारा खजाना ही दान करने का निश्चय किए हुए हैं।

अलंकार—अतिशयोक्ति।

विशेष—इस पद्य में लक्ष्मी, ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ, इन्द्र कुबेर आदि की चिन्ता बड़े स्वाभाविक रूप में व्यक्त की गई है।

हूल हियरा में कानन परि है टेर,
भेंटत सुदामै स्याम चाबिन अघात ही।
कहै नरोत्तम रिद्धि सिद्धिन में सोर भयो,
ठाड़े थरहरे मुख और सोचें कमला तहीं।
नाकलोक, नागलोग ओक-ओक थोक-थोक,
ठाड़े थरहरे मुख सूखे सब गात ही।
हालौ परौ थोकन में, लालो परौ लोकन में,
चालो परो चक्कन में, चाउर चबात ही ॥५२॥

शब्दार्थ—हूल=व्याकुलता, व्यग्रता, परेशानी, घबराहट। कानन=कानों में टेर। आवाज़, ध्वनि, पुकार। चाबि=चबाते हुए। अघात=तृप्त। थरहरे=थर-थर करती है, काँपती है। नाकलोक=स्वर्गलोक। नागलोक पाताल, नागलोक, नागों का लोक। ओक=घर। थोक=गली, मुहल्ला, समूह। हालौ=शोर, हल्ला। चक्कन=भूमि, मण्डल, दिशा। लालो परौ=

कष्ट में पड़ना, दुःख में पड़ना, कठिनाई में पड़ना। चालो परो=चलने लगा।

अर्थ—जब श्रीकृष्ण सुदामा के भेंट के लिए लाए हुए चावलों को खाने लगे तो सबके हृदय धक्-धक् करने लगे। सबके कानों में केवल यही एक ध्वनि गूँज रही थी कि श्रीकृष्ण सुदामा जी से मिल रहे हैं और उनके लाए हुए चावल खा रहे हैं परन्तु तृप्त नहीं होते। कवि नरोत्तमदास जी कहते हैं कि उस समय ऋद्धियों और सिद्धियों में शोर मच गया, खलबली पड़ गई। लक्ष्मी भी काँप रही है और जहाँ की तहाँ ही खड़ी सोच में पड़ हुई है। क्या स्वर्ग-लोक, क्या पाताल, क्या घर-घर, क्या गली-गली, सभी जगह सब खड़े-खड़े सोचने लगे। सोच और चिन्ता के कारण सबके मुख और शरीर सूख गए हैं। सभी स्थानों पर हल्ला अर्थात् शोर मचा हुआ है, सभी लोकों में सब लोग घबराए हुए हैं। और दिशाओं में चक्र-सा चल रह है। सारा वातावरण ही चलायमान हो गया है।

अलंकार—अनुप्रास की छटा दर्शनीय है।

विशेष—भावानुकूल भाषा, कहावतों और अनुप्रासों ने इस पद को बड़ा ही सुन्दर रूप प्रदान किया है।

भौन भरे पकवान मिठायन लोग कहैं निधि है सुषमा के।
साँझ सबेरे पिता अभिलाषत, दाख न चाखल सिंधु क्षमा के।
ब्राह्मण एक कोउ दुखिया सेर पाउक चाउर लायौ समा के।
प्रीति की रीति कहा कहिए तेहि बैठे चबावत कंत रमा के ॥५३॥

शब्दार्थ—भौन=भवन, मन्दिर, महल। निधि=समुद्र। सुषमा=रूप, सौन्दर्य। सांझ=सन्ध्या। दाख=किशमिश, मेवा, सूखे अंगूर। सिन्धु क्षमा के=क्षमा के सागर, सहनशील, श्रीकृष्ण। सेर पाउक=पाव सेर। कन्त=स्वामी, पति। समा के=एक प्रकार के चावल।

अर्थ—सुदामा जी के लाए हुए चावल श्रीकृष्ण जी बड़े आनन्द से चबा रहे हैं परन्तु सभी लोग आश्चर्यचकित से हैं। कवि इसका वर्णन करते हुए कहता है कि लोग कह रहे हैं जिन श्रीकृष्ण के भवन अनेकों प्रकार के पकवानों, बढ़िया मिठाइयों से भरे पड़े हैं जिन श्रीकृष्ण को लोग सुख का सागर कहते हैं। दया तथा क्षमा के सागर श्रीकृष्ण पिता के सायं तथा सबेरे

अभिलाषा करने पर दाख तक नहीं चखते, ऐसे महान् लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण के सामने भेंट करने के लिए कोई दुखिया गरीब ब्राह्मण पाव भर समा के चावल लाया है। प्रेम के ढंग ही निराले होते हैं क्या कहा जा सकता है, श्रीकृष्ण यह सारा वैभव, ऐश्वर्य का ध्यान छोड़कर उन पाव भर समा के चावल को बड़े चाव तथा आनन्द से चबा रहे हैं।

अलंकार—विषम है।

विशेष—इस पद्य में भगवान कृष्ण के द्वारा सुदामा जी के चावल खाने पर लोगों के आश्चर्य द्वारा श्रीकृष्ण के भक्त के प्रति प्रेम को दिखाया गया है और 'बस में होते आए भगवान भक्त के' की उक्ति अपने असली रूप में दृष्टिगोचर होती है।

मुठी तीसरी भरत ही, रुकमिन पकरी बांह।
ऐसी तुम्हें कहा भई, सम्पति की अनचाह ॥५४॥

शब्दार्थ—रुकमनि=श्रीकृष्ण की बड़ी रानी रुक्मिणी। अनचाह= अनासक्ति भाव, मन फिर जाना।

अर्थ—जब श्रीकृष्ण जी ने तीसरी बार चावल खाने के लिए मुट्ठी भरी तो एकदम उनकी बड़ी रानी रुक्मिणी ने उनकी बाँह पकड़ ली और बोलीं कि धन-सम्पत्ति से आपको इतनी अनासक्ति क्यों हो गयी है।

कही रुकमनि कान में, यह धौं कौन मिलाप।
करत सुदामहि आपसों, होत सुदामा आप ॥५५॥

शब्दार्थ—यह धौं कौन मिलाप=यह मिलाप या प्रेम कैसा है।

अर्थ—रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण जी के कान में कहा हे नाथ यह आपका प्रेम किस प्रकार का है। सुदामा की दरिद्रता को दूर करते-करते और उसे अपने समान सुखी बनाते-बनाते आप स्वयं सुदामा की तरह दरिद्र बनते जा रहे हो।

विशेष—अपने मित्र निर्धन सुदामा को धन देते-देते स्वयं सुदामा बनने में श्रीकृष्ण के भक्त-वत्सल, दीनबंधु तथा महादानी होने का परिचय मिलता है।

हाथ गह्यौ प्रभु को कमला कहै, नाथ कहा तुमने चित धारी।
तन्दुल खाय मुठी दुई, दीन कियो तुमने दुई लोक बिहारी ॥

खाय मुठी तिसरी अब नाथ कहाँ, निज बास की आस बिचारी।
रंकहि आप समान कियो तुम चाहत आपहि होन भिखारी ॥५६॥

अर्थ—जब श्रीकृष्ण जी सुदामा के चावल चबा रहे थे तो उस समय लक्ष्मी ने उनका हाथ पकड़कर कहा, हे नाथ अपने मन में आपने क्या निश्चय किया है। हे स्वामी उसके दो मुट्ठी चावल खाकर तो आपने उसे दो लोक ही दे दिए, अब तीसरी मुट्ठी चावल खाकर तीसरा लोक भी उसे ही दे देना चाहते हैं यदि ऐसा विचार ही है तो पहले यह तो सोच लो कि आप स्वयं कहां रहेंगे। क्या रंक अर्थात् गरीब को अपने समान महान् बनाकर स्वयं भिखारी बनने का विचार है।

याही कौतुक के समय, कही सेवकनि आय,
भई रसोई सिद्ध प्रभु, भोजन करिए जाय ॥५७॥

शब्दार्थ—कौतुक=खेल, तमाशा।

अर्थ—श्रीकृष्ण जी को लक्ष्मी जी चावल की तीसरी मुट्ठी खाने से रोक रही थीं और वे खाने की धुन में थे। जब यह रोकने और न मानने का तमाशा हो रहा था कि सेवकों ने आकर कहा कि भोजन तैयार हो गया है चलिए भोजन कीजिए।

बिप्र सहित असनान करि, धोती पहिरि बनाय,
संध्या करि मध्यान्ह, की चौका बैठे जाय ॥५८॥

शब्दार्थ—बिप्र=ब्राह्मण। मध्यान्ह=दोपहर।

अर्थ—भोजन के तैयार हो जाने की सूचना पाकर श्रीकृष्ण जी तथा सुदामा जी ने स्नान किया, धोती आदि पहने, दोपहर की सन्ध्या की और चौका (रसोईघर) में भोजन करने के लिए जा बैठे।

रूपे के रुचिर थार पावस सहित सिता,
सोभा जिन जीति है सरद हु के चन्द की।
दूसरे पहीति भात सोधों सुरभी कौ घृत,
फूले फूले फुलका प्रफुल्ल दुति मंद की।
पर मुंगोरी बरी व्यंजन अनेक भांति,
देवता बिलोकें सोभा भोजन अनन्द की,

था बिधि सुदामा जू कौं आछैं सैं जिमाय प्रभु,
पाछे तो पछावरि परोसी आनि कंद की ॥५९॥

शब्दार्थ—रूपे=चान्दी। रुचिर=सुन्दर, स्वादिष्ट, मन भाता। दूध की खीर आदि। सिता=चीनी, खाण्ड, मिश्री, शक्कर आदि। सरद=शरद्ऋतु। पहीति भात=दाल, भात या चावल। सोंधो=सुगन्धयुक्त। सुरभि=गाय। प्रफुल्ल=खिला हुआ कमल, प्रसन्न। दुति=चमक। मंद=फीकी। आछेसैं=अच्छी तरह से। व्यंजन=पकवान, खाने की वस्तुएं। मुंगोरा=मंगोड़ी। पछावरि=दही तथा शक्कर को मिलाकर बनाई हुई सिरकन। कन्द की=मीठे वाली, मीठी।

अर्थ—सुदामा जी श्रीकृष्ण जी के साथ रसोई में भोजन करने गए, सुन्दर-सुन्दर चांदी के थालों में चीनी मिली खीर रखी गई थी जिसके सामने शरद्-कालीन चन्द्रमा का महत्त्व भी कम हो गया। एक अन्य थाल में दाल-चावल रखे गए थे जिसमें गाय का सुगन्धयुक्त घी पड़ा हुआ था। थाल में गेहूं के फुलके परोसे गए थे जिनके सामने खिले हुए कमल भी आभाहीन थे। पापड़, मंगौड़ी, बड़ों तथा अन्य अनेकों प्रकार के भोजन सुदामा जी के लिए परोसे गए। भोजन के इस आनन्द को देवता देख रहे हैं। इस प्रकार सुदामा जी को अच्छी तरह से भोजन कराने के बाद श्रीकृष्ण जी ने मीठा श्रीखण्ड उनके आगे रखा।

अलंकार—इस पद्य में उपमेय से उपमान की निन्दा हुई है अतः प्रतीप अलंकार है।

विशेष—इस छन्द में कवि ने अनेकों प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों का सुन्दर वर्णन किया है।

करि आचमन मुख धोय के, पान खाय सुख पाय,
पौढ़े पलका पै तबै कृष्ण पलोटे पाँय ॥६०॥

शब्दार्थ—पौढ़े=लेट गए। पलोटे पाँय=पैर दबाए।

सुदामा जी ने भोजन करने के बाद आचमन किया, मुख धोया तदुपरान्त पान खाकर बड़े प्रसन्न हुए। फिर वे आराम करने के लिए पलंग पर लेट गए और कृष्ण जी उनके पांव दबाने लगे।

दाहिने वेद पढ़ैं चतुरानन सामुहे ध्यान महेस धरयौ है।
बायें दोऊ कर जोरे सुलेवक देवन साथ सुरेस खरयौ है।
ऐतेई बीच अनेक लिए धन पायन आय कुबेर परयौ है।
देखि विभौ अपनो बपुरो वह ब्राह्मण चौंकि परयौ है ॥६१॥

शब्दार्थ—चतुरानन=ब्रह्मा जी। सामुहे=सामने की ओर। सुरेश=इन्द्र।

पलंग पर लेटने पर सुदामा जी को नींद आ गई। निद्रा में सुदामा जी क्या देखते हैं कि उनकी दायीं तरफ ब्रह्मा जी वेद पढ़ रहे हैं। सामने की ओर शिवजी ध्यान मग्न बैठे हैं। उनकी बाईं ओर अपने सेवकों को साथ लिए हुए दोनों हाथ जोड़े इन्द्र खड़े हैं। इतने में इन सबके बीच में अनेक प्रकार की धन सम्पत्ति लेकर धन के देवता कुबेर आकर चरणों में गिर पड़े हैं। अपने आस-पास इतना धन सम्पत्ति, वैभव और ऐश्वर्य को देखकर बेचारे सुदामा चौंक पड़े।

अलंकार—ऐश्वर्य तथा वैभव का वर्णन है, अतः उदात्त अलंकार है।

विशेष—भक्त वत्सल भगवान् कृष्ण की अतुल श्रद्धा होने के कारण अन्य देवताओं की उपस्थिति का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है।

सात दिवस यहि विधि रहे, दिन-दिन आदर भाव,
चित्त चल्यौ घर चलन कौ, ता कर सुनौ बनाव ॥६२॥

शब्दार्थ—बनाव=वर्णन।

अर्थ—इसी प्रकार आनन्दपूर्वक सुदामा जी कृष्ण जी के पास सात दिन तक रहे। दिन-दिन उनका आदर सम्मान बढ़ता ही गया। तब एक दिन उनकी इच्छा घर चलने की हुई, उनका वर्णन सुनो।

वस्त्रादिक बहू भाँति के, पहिराए सुखदाय,
करि प्रनाम करि जोरि कै, बोले त्रिभुवनराय ॥६३॥

शब्दार्थ—प्रनाम=प्रणाम। त्रिभुवनराय=तीनों भवनों (लोकों) के स्वामी।

अर्थ—जब श्रीकृष्ण जी को इस विचार का पता लगा तो सुदामा जी को अनेकों प्रकार के सुख देने वाले वस्त्र पहनाए और हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए कहा।

धन्य कहा कहिए द्विज जू तुम सों, जग कौन उदार प्रवीनो।
पिछली प्रीति निबाही भली विधि, दोष निवारिके रोष न कीनो।
हौं द्विज के चरणोदक हेतु अजन्म, कहाय कै जन्म सु लीनो।
आवन कै निज पावन सो यहां, मोसो अपावन पावन कीनो ॥६४॥

शब्दार्थ—निवारिके=हटाकर, समाप्त करके, दूर करके। रोष=गुस्सा, क्रोध। पावन=पाँव, पैर। चरणोदक=चरणामृत। पाँव धोने का जल। पावन=पवित्र। अपावन=अपवित्र।

अर्थ—श्रीकृष्ण जी सुदामा से बोले, हे ब्राह्मण देवता तुम धन्य हो। इस सारे संसार में आप जैसा उदार हृदय और कौन हो सकता है। बालकपन के पुराने प्रेम का आपने अच्छी तरह से निर्वाह किया है। मेरे दोषों की ओर आपने ज़रा भी ध्यान नहीं दिया और क्रोध नहीं किया। मैं जन्म लेकर भी अजन्मा ही था। आप जैसे ब्राह्मण के चरणों के धोने का जल पीने से मेरा जन्म-जन्म सफल हुआ है। स्वयं अपने पांव चलकर यहाँ आये और मुझ जैसे अपवित्र को भी पवित्र कर दिया।

अलंकार—पावन शब्द दो बार भिन्न-भिन्न अर्थों में आया है अतः यमक अलंकार है।

गोपुर लौं पहुँचाय कै, फिरे सकल दरबार,
मित्र वियोगी कृष्ण के, नेम चली जल धार ॥६५॥

अर्थ—श्रीकृष्ण सुदामा जी को नगर के बाहिर द्वार तक पहुँचाकर दरबार की ओर आए। मित्र के चले जाने के कारण विदाई से व्याकुल श्रीकृष्ण की आँखों से आंसुओं की धारा बहने लगी।

विशेष—इस दोहे से श्रीकृष्ण जी के निष्कपट प्रेमी हृदय का परिचय प्राप्त हो जाता है।

देनौ हुतौ सो दै चुके, बिप्र न जानी गाथ,
मन में गुनी गुपाल जू, कछु न दीन्हों हाथ ॥६६॥

शब्दार्थ—देनो हुतौ=जो देना था। गाथ=कहानी, बात, गाथा। गुनी=गुण वाले, सोची।

अर्थ—श्रीकृष्ण ने जो कुछ देना था वह तो दे ही दिया था, परन्तु यह बात सुदामा की समझ में नहीं आयी। उसने यही सोचा कि कृष्ण जी ने

चलते समय कुछ भी तो नहीं दिया। इससे उसे बड़ा खेद हुआ और वह सोचने लगा।

वह पुलकनि, वह उठि मिलनि, वह आदर की भान्ति,
वह पठवनि गोपाल की कछु न जानी जाति ॥६७॥

शब्दार्थ—पुलकनि=प्रसन्नता। मिलनि=मिलना। पठवनि=भेजना।

अर्थ—चलते समय जब श्रीकृष्ण जी ने सुदामा के हाथ में कुछ भी नहीं दिया तो वह सोचने लगा कि श्रीकृष्ण का मुझे देखकर इतना आनन्दित होना, उठकर मिलना, कई प्रकार से मेरा आदर, मान, सम्मान करना और चलते समय कुछ भी न देना और खाली हाथ ही भेजना, यह कृष्ण का कैसा प्रेम और व्यवहार है कुछ भी पता नहीं लगता। समझ ही नहीं आता कि वह प्रेम दिखाने का बनावटी ही था या उसमें कुछ सत्य भी था। उसे क्रोध आ गया।

घर-घर कर ओढ़त फिरे तनक दही के काज,
कहा भयो जो अब भयो, हरि को राज समाज ॥६८॥

शब्दार्थ—कर=हाथ। ओढ़त फिरे=फैलाकर माँगते फिरे। तनक=थोड़े से।

अर्थ—क्रोध में भरकर सुदामा जी श्रीकृष्ण को बुरा भला कहते हुए कहने लगे आज वाले कृष्ण वही तो हैं जो थोड़ी-सी दही के लिए भी घर-घर हाथ पसारकर माँगते फिरते थे। यदि आज श्रीकृष्ण महाराज हो गए हैं, उनके यहाँ राजाओं का समाज हो गया है, ठाट-बाट हो गया है तो क्या हुआ। घर-घर माँगनेवाले ने क्या देना है। स्वभाव तो वही है न।

विशेष—इस दोहे में सुदामा का मनोवैज्ञानक रूप प्रस्तुत किया गया है।

हौं आवत नाहीं हुतौं, वाही पठियो ठेलि,
कहिहौं धन सों जाइके, अब धन धरौ सकेलि ॥६९॥

शब्दार्थ—पठियो=भेजा था। ठेलि=बलपूर्वक, आग्रहपूर्वक, जबर्दस्ती। धन=स्त्री, पत्नी। धन=सम्पत्ति, धन-सम्पदा। सकेलि=संभालकर जोड़कर।

अर्थ—मैं तो आना ही नहीं चाहता था। उसी (पत्नी) ने मुझ जबर्दस्ती से यहाँ भेजा था। अब जाकर उससे कहूँगा कि ले जो धन कृष्ण ने दिया है उसे संम्भाल समेट कर रख ले।

अलंकार—धन, धन; भिन्न,-भिन्न; अर्थों में आने के कारण यमक अलंकार है।

बालापन के मित्र हैं कहा देऊँ मैं साप,
जैसो हरि हमकों दियो, तैसो पावहिं आप ।।७०।।

अर्थ—सुदामा को श्रीकृष्ण के इस व्यवहार के कारण बड़ा क्रोध आया फिर अपने आपसे कहने लगे कि कृष्ण मेरे बचपन के साथी हैं, मैं उन्हें श्राप क्या दूँ, फिर भी श्रीकृष्ण ने जैसा मुझे दिया है, वैसा उन्हें भी मिले।

नौ गुन धारी छगुन सौं, तिगुना मध्ये जाय।
लायौ चापल चौगुनी, आठौं गुनन गँवाय ।।७१।।

शब्दार्थ—नौगुन धारी = धामे की नौ तारोंवाली यज्ञोपवीत पहननेवाला (सुदामा) छगुन=यज्ञ करना, यज्ञ कराना, पढ़ना, दान देना, दान लेना, आदि छः गुण। तिगुना मध्ये = (यज्ञ करना, पढ़ना, दान देना) तीन गुण यह क्षत्रिय के तीन गुण कहे गए हैं। चापल=चंचलता, चतुराई, व्याकुलता। आठों विवेक, वैराग्य षट्, सम्पत्ति, ममुक्षता, मनन, समाधि, श्रवण, निदिध्यासन, आठ गुण।

अर्थ—सुदामा जी क्षुब्ध होकर सोचने लगे कि मैं नौ धागोंवाला यज्ञोपवीत पहननेवाला, ब्राह्मण के छः गुणों से पूर्ण ब्राह्मण ने तीन गुण-वाले क्षत्रियों के बीच में जाकर चौगुनी व्याकुलता ही पाई है और मेरे आठों गुण मुझसे छूट गए हैं। अपने समस्त गुण तो छूट गए और उनके बदले में केवल व्याकुलता ही मिली है।

विशेष—खाली हाथ लौटने के कारण सुदामा जी को खेद हो रहा है। अनिच्छा होते हुए भी यहाँ आया और सुख या धन की प्राप्ति न होकर अशान्ति ही मिली।

और कहा कहिए जहाँ कंचन ही के धाम।
निपट कठिन हरि को हियौ, मोको दियो न दाम ।।७२।।

शब्दार्थ—कंचन=सोना। हियौ=मन, दिल, हृदय। दाम=धन।

अर्थ—फिर सुदामा जी कहने लगे और क्या कहें। द्वारिका नगरी के घर भी सोने के ही बने हुए हैं। परन्तु ऐसी नगरी के स्वामी होते हुए भी श्रीकृष्ण इतने कठोर हृदय हैं कि मेरी दीन हीन अवस्था देखकर भी मुझे कुछ धन आदि नहीं दिया और खाली ही वापिस कर दिया।

बहु भण्डार रतनन भरे कौन करे अब रोष।
दोष आपने भाग को, जानि करौ सन्तोष ॥७३॥

शब्दार्थ—रोष=क्रोध। भाग=भाग्य। जानि=जानकर, समझकर।

अर्थ—श्रीकृष्ण जी के पास तो रत्नों से भरे भण्डार (कोष) हैं पर इसके लिए उन पर क्रोध करना व्यर्थ है। इसमें किसी अन्य का कुछ भी दोष नहीं केवल अपने भाग्य का ही दोष है अतः सन्तोष ही करना चाहिए।

इमि सोचत-सोचत झखत, आये निज पुर तीर।
दीठि परि इक बार ही, हय गयन्द की भीर ॥७४॥

शब्दार्थ—इमि=इसी प्रकार। झखत=झींखते हुए, पश्चाताप करते हुए। तीर=पास, समीप। दीठि परी=दृष्टि पड़ी। हय=घोड़े। गयन्द=हाथी। भीर=भीड़। पुर=पुरी, नगर।

अर्थ—इसी प्रकार मन में सोचते-सोचते, पछताते हुए, और झींकते हुए अपने गांव के पास पहुंचे। वहां पहुँचते ही अनायास घोड़ों तथा हाथियों की भीड़ दिखाई पड़ी।

हरि दरसन तें दूरि दुःख, भयो गयो निज देस
गौतम रिषि को नाम लै, कीन्हों नगर प्रवेश ॥७५॥

शब्दर्थ—गौतम रिषि=ऋषि गौतम।

अर्थ—सुदामा जी को घोड़े हाथियों की रेल-पेल में अपने गाँव का जब पता न लगा तो चिन्तित होकर मन-ही-मन कहने लगे कि हरि अर्थात् श्रीकृष्ण के दर्शनों से इतना दुख ही कटा कि अपना देश भी हाथ से जाता रहा। तब गौतम ऋषि की स्तुति करने के उपरान्त सुदामा जी नगर में प्रविष्ट हुए।

वैसोहि राज समाज बने गज बाजि घने मन संभ्रम छायौ।
कैधौं पर्‌यो कहूँ मारग भूलि कै, कै अब फेरि हौं द्वारिका आयौ।

भौन विलोकिन को मन लोचत सोचत ही सब गाँव मंझायौ।
पूछइ पांडे फिर सबसों पर झोंपड़ी कौ कहुं खोज न पायौ ॥७६॥

शब्दार्थ—संभ्रम=भूला हुआ, भ्रमयुक्त, भ्रान्त। बाजि=घोड़। कैधों=अथवा, या। भौन=भवन। मंझायौ=छान मारा, खोज डाला। मन-लोचत=मन व्याकुल है, मन तड़पता है, मन दुखता है।

अर्थ—सुदामा को अपना पुराना गांव नहीं मिल रहा, सारा नगर ही द्वारका-सा लगने लगा। उसी प्रकार का राजसी ठाट-बाट, राज-समाज तथा उसी प्रकार से हाथियों और घोड़ों की भीड़ को देखकर उनका मन भ्रमित हो गया। वे मन ही मन सोचने लगे कि या तो मैं मार्ग भूल गया हूँ, भटक गया हूँ या लौट फिरकर द्वारिका जी ही आ गया हूँ। अपना घर देखने को उनका मन व्याकुल हो गया और व्याकुलता के कारण उन्होंने सारा गांव छान मारा। सुदामा पण्डित जी सबसे अपनी झोंपड़ी के विषय में पूछते फिरते हैं परन्तु उनकी झोंपड़ी का कहीं पता ही न मिला। उनकी व्याकुलता और बढ़ी।

अलंकार—सन्देह अलंकार है।

विशेष—श्रीकृष्ण जी ने सुदामा के द्वारिका में रहते हुए ही उनके घर को सभी प्रकार के सुखों, ऐश्वर्य तथा वैभव से परिपूर्णकर कर दिया परन्तु उन्हें बताया नहीं इसलिए वे अपनी झोंपड़ी अति व्याकुलता से तालाश करने पर भी न पा सके।

देव नगर के यच्छपुर, हौं भटको कित आय,?
नाम कहा यहि नगर कौ, सो न कहौ समुझाय
सो न कहौ समुझाय, नगर वासी तुम कैसे ?
पथिक जहाँ संभ्रमहि, जहाँ के लोग अनैसे
लोग अनैसे, नहिं लखौं द्विज देव नगर के।
कृपा करि हरिदेव, दियौ है देवनगर के ॥७७॥

शब्दार्थ—यच्छपुर=अलकापुरी, कुबेर की नगरी। अनैसे=खोटे, बुरे। संभ्रमहिं=भ्रम में पड़े हुए हैं। हरिदेव=श्रीकृष्ण। लखौं=देखी।

अर्थ—सुदामा जी ने जब नगर को देखा तो उस नगर के रहनेवालों से पूछने लगे क्या यह देवताओं की नगरी है या कुबेर की नगरी अलका-

पुरी है। मैं भटक कर किधर आ गया। इस नगर का क्या नाम है। आप लोग मुझे समझा क्यों नहीं देते। तुम कैसे इस नगर के निवासी हो कि मुझे कुछ समझाते नहीं हो। इस नगर के निवासी वास्तव में कितने दुष्ट हैं कि भूले हुए राही को कुछ बताते ही नहीं। सुदामा जी से यह बात सुनकर नागरिक बोले कि हे ब्राह्मण देवता! देखो इस नगर के निवासी खोटे नहीं हैं। भगवान् कृष्ण ने अपनी कृपा से ही इसे देवनगर अर्थात् स्वर्गपुरी के समान बना दिया है।

सुन्दर महल मनि मानिक जटित अति,
सुबरन सूरज प्रकाश मानौ दै रह्यौ।
देखत सुदामा जू कों नगर के लोग धाये,
भेंटे अकुलाय जोई सोई पाँय छुवै रह्यौ।
ब्राह्मनी भूषन विविध विधि देखि कह्यौ,
जैहौं हौं निकासो सो तमासौ जग ज्वै रह्यौ,
ऐसी दशा फिरि जब हरि कौ दरस पायौ,
द्वारिका के सरस सुदामापुर ह्वै रह्यौ॥७८॥

शब्दार्थ—मनि-मानिक=मणि-माणिक। जटित=जड़ा हुआ। सुबरन=सोना, सुवर्ण। जोई=जो भी। सोई=वही। ज्वै रह्यौ=देख रहा। सरस=जैसा, समान।

अर्थ—देवनगरी का वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि नगर में मणि-माणिकों से जड़े हुए बड़े-बड़े सुन्दर भवन हैं। उनकी शोभा से ऐसा दिखाई पड़ता है जैसे सोने का सूर्य प्रकाश दे रहा हो। सुदामा जी को देखते ही नगर के लोग दौड़ पड़े और व्याकुलता से उन्हें देखते ही उनके पाँव छूने लगे। जब उन्होंने ब्राह्मणी के अनेकों प्रकार के आभूषण देखे तो अपने आपसे ही अपने मन में कहने लगे कि मुझे अभी यहाँ से निकाल दिया जाएगा और यह सभी लोग मेरे यहाँ से निकाले जाने के दृश्य को देखने के लिए ही यहाँ इकट्ठे हुए हैं। कवि कहते हैं कि यह श्रीकृष्ण जी के दर्शनों का ही प्रताप है कि सुदामापुरी भी द्वारिकापुरी ही बन गई है।

अलंकार—उदात्त और उत्प्रेक्षा अलंकार हैं।

जगर मगर जोति छाय रही चहुं ओर,
अगर बगर हाथी घोरन कौ सोर है।
चौपर की बनी है बजार पुनि सोरन के,
महल दुकान की कतार चहुं ओर है ।।
भीर भार धकापेल चहुं दिसि देखियत,
द्वारिका तें दूनों यहाँ प्यादन कौ जोर है।।
रहिबो को ठान है न, काहू सों पिछान मेरी,
बिन जाने बने कोउ हाड़ मेरे तोर है ।।७६।।

शब्दार्थ—जगर-मगर···जगमगाहट। अगर-बगर=घर-बार, इधर-उधर। सोर=शोर, कोलाहल। चौपर को बाजार=चौक। प्यादन=पैदल सिपाहियों। ठाम=स्थान, जगह। पिछान=पहचान।

अर्थ—सुदामा भ्रम में पड़ा हुआ अब भी उस नगर में घूम रहा है। उसने देखा कि चारों ओर सोने और चाँदी के समान जगमगाहट दिखाई पड़ रही है। इधर-उधर घर-बाहर हाथी और घोड़ों का कोलाहल सुनाई पड़ रहा है। चौपड़ का बाजार बना हुआ है। दोनों ओर सोने के महल और दुकानों की पंक्तियाँ लग रही हैं। चारों ओर बाज़ार और नगर में भीड़-भाड़ और धकापेल हो रही है। स्थान-स्थान पर तैनात सिपाही सबको डाँट-डपटकर शांत करने का प्रयास कर रहे हैं। सब कुछ देखकर सुदामा जी अपने मन में विचार करने लगते हैं कि इस नगर को न तो मैं भली प्रकार से जानता-पहचानता हूँ और न मेरे रहने का ही कोई ठौर-ठिकाना है। यदि मैं इस नगर में बिना जान-पहचान के कहीं रुक गया तो ये अजनबी लोग मेरी हड्डियाँ और पसलियाँ तोड़ डालेंगे। मेरी बस फिर राम-नाम सत्य अवश्य ही हो जायेगी।

विशेष—१. रीतिकालीन शैली का प्रभाव लक्षित होता है।
२. अन्तिम पंक्ति में मुहावरे का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

फूटी एक थारी बिना टोंटनी की झारी हुती,
बाँस की पिटारी औ कथारी हुती टाट की।
बेंटे बिन छुरी औ कमंडल सौ टूक बहौ,
फटे हुते पाये पाटी टूटी एक खाट की।

पथरौटा काठ को कठौता कहुँ दीसौ नाहिं,
पीतर कौ लौटा हो कटोरा हौ न बाटकी ।
कामरी फटी सी हुती डोंड़न की माला ताक,
गोमती की माटी की न सुद्धि कहूं माटकी ॥८०॥

शब्दार्थ—टोंटनी=टोंटी, गर्दन । झारी=लुटिया । कथारी=कथरी । बाटकी=कटोरी । कामरी=कम्बल । सुद्धि=सुध । माटकी=मटकी ।

अर्थ—सुदामा जी अपनी झोंपड़ी का विवरण-वर्णन करते हुए कहते हैं कि मेरे तो एक टूटी-फूटी हुई थाली थी । बिना टोंटी की लुटिया थी । बाँस की एक पिटारी, टाट की एक कथरी थी जो नीचे बिछाने के काम में आती थी । छुरी भी बिना बेंटे की थी और कमण्डल भी टूटा हुआ था । एक खाट थी जिसके पाये फटे हुए थे और एक पाटी टूटी हुई थी । पत्थर का एक पथरौटा और काठ की कठौती का भी कोई पता नहीं । मेरे यहाँ पीतल का लोटा तो था किन्तु कटोरा और कटोरी नहीं थी । फटी हुई एक काली कमली थी । ताक में कहीं जप करने की एक दानेदार माला और गोमती की मिट्टी से बनी हुई एक मटकी भी थी, वह कहाँ को चली गई । इसका भी पता नहीं कि यह थी भी अथवा नहीं । तात्पर्य यह है कि झोंपड़ी के खो जाने से सुदामा की ये सभी चीजें खो गई हैं ।

विशेष—स्मृति संचारी भाव । स्मरण अलंकार है ।

कनक दण्ड धारन कियें, द्वारपाल है द्वार ।
जाय दिखायौ सबन मिलि, यह है भवन तुम्हार ॥८१॥

शब्दार्थ—कनक-दण्ड=सोने की छड़ी ।

अर्थ—जहाँ सोने की छड़ी लिए हुए द्वारपाल खड़े हुए थे वह जगह सभी ने मिलकर सुदामा जी को दिखलाई और कहा—हे ब्राह्मण यही तुम्हारा भवन है ।

कह्यौ सुदामा हँसत हौ, ह्वै के परम प्रवीन ।
कुटी दिखावहु मोहि सों, जहाँ ब्राह्मनी दीन ॥८२॥

शब्दार्थ—प्रवीन=योग्य, चतुर ।

अर्थ—सुदामा जी कहने लतेग हैं कि तुम ऐसे चतुर, योग्य और सभ्य

लोग होकर भी मेरी मजाक बनाते हो। मुझे तो मेरी वही कुटी बतलाओ जहाँ मेरी गरीब ब्राह्मणी पत्नी रहती थी।

द्वारपाल सों तिन कही कहि, पठवहु यह गाथ।
आये विप्र महाबली, देखहूँ होहु सनाथ ॥८३॥

शब्दार्थ—कहि पठवहु=कहला दो। गाथ=सन्देश, सूचना। सनाथ होहु=कृतकृत्य, कृतार्थ।

अर्थ—सुदामा जी की बात की ओर उन लोगों ने कोई ध्यान नहीं दिया। उन्होंने द्वारपाल से कहा कि अन्दर यह सन्देश कहला भेजो कि एक बहुत बड़ा ब्राह्मण आया है। तुम उसके दर्शन कर अपने को कृतार्थ कर लो अर्थात् सनाथ हो जाओ।

सुनत चली आनन्दयुत, सब सखियन लै संग।
नूपुर किंकनि दुंदुभि, मनहुँ काम चतुरँग ॥८४॥

शब्दार्थ—नूपुर=बिछुए। किंकनि=करधनी, किंकणी। दुंदभी=नगाड़ा। काम चतुरंग=कामदेव की चतुरंगिणी सेना।

अर्थ—द्वारपाल से सूचना पाकर सुदामा जी की पत्नी अपनी सब सखियों और सहेलियों को साथ लेकर बड़ी प्रसन्नता के साथ बिछुओं और करधनी की ध्वनि करती हुई इस प्रकार द्वार की ओर चली मानो कामदेव की चतुरंगिनी सेना दुंदभी बजा कर आ रही हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

कह्यौ ब्राह्मणी आय कै, यहै कन्त निज गेह।
श्री जदुपति तिहुँ लोक सें, कीन्हा प्रकट सनेह ॥८५॥

शब्दार्थ—कन्त=स्वामी, प्राणनाथ। गेह=घर।

अर्थ—ब्राह्मणी ने आकर सुदामा से विनम्र विनय की, कि हे स्वामी यही अपना घर है। श्रीकृष्ण ने इस प्रकार हमारी दरिद्रता का नाश करके संसार में अपना प्रेम प्रकट कर दिया है।

हमें कंत तुम जनि कहौ, बोलो बचन संभारि।
इहैं कुटी मेरी हती, दीन बापुरी नारि ॥८६॥

शब्दार्थ—जनि=मत। हती=थी। बापुरी—बेचारी, गरीब।

अर्थ—अपने सम्मुख एक सजी हुई युवती को खड़े देखकर और उसके

द्वारा पति (स्वामी) सम्बोधन सुनकर सुदामाजी सकपकाये और कहने लगे—"हे स्त्री तुम बचन संभाल कर बात करो। मुझे अपना स्वामी क्यों बना रही हो। इस स्थान पर तो मेरी कुटी बनी हुई थी, जिसमें दीन-दुखिया बेचारी मेरी पत्नी निवास करती थी।

मैं तो नारी तिहारियै, सुधि संभारिए कन्त।
प्रभुता सुन्दरता दई, अद्भुत श्रीभगवंत ॥८७॥

शब्दार्थ—तिहारियै=तुम्हारी ही। सुधि संभारिए=होश कीजिए, याद कीजिए। श्री भगवंत=श्रीकृष्ण।

अर्थ—पति द्वारा तिरस्कृत होने पर भी सुदामा की स्त्री निराश न हुई। पति के संशय को दूर करने के लिए उसने कहा—जरा ध्यान तो दीजिए—मैं तो आपकी पत्नी हूँ, आज मैं दीन-दुखिया अवश्य नहीं हूँ, किन्तु यह सब धन-सम्पत्ति और सुन्दरता मुझे श्रीकृष्ण की अनुकम्पा से ही प्राप्त हुई है। वे सचमुच अद्भुत हैं।

टूटी-सी मड़ैया मेरी परी हुती याही ठौर,
तामें परो दुख काटों कहाँ हेम-धाम री।
जेवर जराऊ तुम साजे प्रति अंग अंग,
सखी सौहैं संग रह छूछी हुती छाम री।
तुम तौ री! पाटम्बर ओढ़े हौ कनारीदार,
सारी जरतारी वह ओढ़े कारी कामरीं।
मेरी वा पंडाइनि तिहारी अनुहारिही पै,
बिपदा सताई वह पाई कहाँ पामरी ॥८८॥

शब्दार्थ—हेमधाम=सोने का महल। जराउ-उड़ाऊ। छूछी हुती=खाली थी, आभूषणहीन थी। छाम=क्षीण, दुबली-पतली। पाटंबर=रेशमी वस्त्र। सारी जरतारी=जरी के काम की साड़ी। तिहारी अनुहारी=तुम्हारे ही समान। बिपदा सताई=दुःख की मारी। पामरी=बेचारी।

अर्थ—सुदामा को अपनी स्त्री की बात पर विश्वास न हुआ कि जो कुछ यह कह रही है, ठीक ही है। इसलिए वे फिर कहते हैं—इसी स्थान पर तो मेरी एक टूटी-सी झोंपड़ी पड़ी थी जिसमें मैं पत्नी सहित अपने

दुःख के दिन काटा करता था। ऐसे सोने के महल कहाँ से और कैसे आ गये ? तुम तो प्रत्येक अंग में रत्न-जड़ित आभूषण पहने हो और इतनी सखी सहेलियाँ तुम्हारे साथ हैं परन्तु मेरी वह ब्राह्मणी तो आभूषण रहित और दुबली-पतली थी। तुम तो जरी की साड़ी पहने हो, किनारेदार रेशमी दुपट्टा ओढ़े हो किन्तु उस मेरी स्त्री के पास तो केवल ओढ़ने के लिए काला-कम्बल ही था। यद्यपि मेरी ब्राह्मणी शक्ल-सूरत में तुम्हारे ही समान थी। किन्तु दुःख की मारी बेचारी अब न जाने कहाँ मिलेगी।

अलंकार—अनुप्रास।

ठाड़ो ह्वै पंडाइनि कहत मंजु भायन सों,
प्यारे परौं पाइन तिहारोई जु घरू है।
आये चलि हरौं स्रम कीन्हों तुम भूरि दुःख,
दारिद गमायौं यों हंसत गह्यो करू है।
रिद्धि-सिद्धि दासी करि दीन्हीं अविनासी कृष्न,
पूरन प्रकासौ कामधेनु कोटि बरु हैं।
चलौ पति भूलौ मति तुम्हरे दीन्हीं जदुपति,
संपति सो लीजिए समेत सुरतरू है ॥८६॥

शब्दार्थ—ठाड़ी ह्वै=खड़ी होकर। पंडाइन=सुदामा पाण्डे की स्त्री। मंजु-कोमल, सुन्दर। भायन सौं=भावों से। हरौं स्रम=श्रम दूर करना। भूरि=बहुत। दारिद गमायौ=दरिद्रता दूर की। गह्यो करु है=हाथ पकड़ लिया है। अविनासी (अविनाशी)=अक्षय और अनादि। पूरन प्रकासो=पूर्ण प्रकाश करने वाले, ज्योतिस्वरूप। कामधेनु=इच्छा पूरी करने वाली देवताओं की गाय। बरु-वर, श्रेष्ठ। सुरतरु=कल्पवृक्ष।

अर्थ—सुदामा जी के तर्कों की ओर उनकी पत्नी ने कोई ध्यान नहीं दिया। उसने मधुर स्वर में और भी कोमलता लाते हुए कहा—"हे प्राण-नाथ मैं आपके चरणों का स्पर्श करके कहती हूँ कि यही आपका घर है, इसमें पधारिये। आप बहुत दूर से चलकर आये हैं। यात्रा में अनेक प्रकार के कष्टों को सहन किया है। आओ, अपने श्रम को दूर करो। आपने द्वारिका जाने में अनेक दुःख उठाये पर अब तो सब दीनता और दरिद्रता नष्ट हो गई है। सुदामा को इस प्रकार समझाते हुए और मुस्कराते हुए उसने उनका

हाथ पकड़ लिया। अविनाशी भगवान् श्रीकृष्ण ने रिद्धि और सिद्धियों को तुम्हारी दासी बना दिया है। यह-सब कुछ उन्होंने मित्रता परिपालन के लिए ही तो किया है। उन पूर्ण ज्योतिस्वरूप भगवान् ने करोड़ों श्रेष्ठ काम-धेनु प्रदान की हैं। हे प्राण नाथ! भ्रम में मत पड़िये। श्रीकृष्ण ने कल्प-वृक्ष सहित जो धन तुम्हें दिया है उसे चलकर ग्रहण कीजिये।

समुझायो निज कंत को, मुदित ले गई गेह।
अन्हवायौ तुरतहिं उबट, सुचि सुगंध सों देह ॥९०॥

शब्दार्थ—मुदित=प्रसन्न। अन्हवायौ=स्नान कराया।

अर्थ—सुदामा की पत्नी ने अपने पति को समझाया और प्रसन्नता-पूर्वक उन्हें घर के अन्दर लिवा ले गई। वहाँ उसने पवित्र और सुगन्धित उबटन मलकर उनको अच्छी तरह से स्नान कराया।

पूज्यो अधिक सनेह सों, सिंहासन बैठाय।
सुचि सुगंध अम्बर रचे बर भूषन पहिराय ॥९१॥

शब्दार्थ—अम्बर=वस्त्र, कपड़े। अम्बर रचे=वस्त्र पहनाये।

अर्थ—स्नान के पश्चात् सुदामा को सिंहासन पर बैठाकर उनकी पत्नी ने बड़े प्रेम और आदर से उनकी पूजा-अर्चना की। उन्हें सुगन्धित बहुमूल्य वस्त्रों के साथ-साथ सुन्दर आभूषण पहनाये।

सीतल जल अंचवाय कै, पानदान भरि पान।
धरयो आय आगें तुरत, छवि रवि प्रभा समान ॥९२॥

शब्दार्थ—अँचवाय कै=आचमन कराकर, हाथ-पैर धुलाकर। छवि=सुन्दरता। रवि=सूर्य। प्रभा=प्रकाश, कान्ति, सुन्दरता।

अर्थ—सुदामा को वस्त्राभूषण पहनाने के पश्चात शीतल जल से उनके हाथ पैर धोकर उन्हें बैठाया। शीघ्र ही सूर्य की प्रभा के समान सुन्दर पान-दान पानों से भर कर सुदामा जी के सम्मुख समुपस्थित कर दिया।

अलंकार—उपमा।

करहिं चौंर चहुं ओर तें, रम्भा सम सब नार।
पतिव्रता अति प्रेम सों, ठाड़ी करैं बयार ॥९३॥

शब्दार्थ—चौंर=चँवर। रम्भा=देवलोक की अप्सरा, चिरयौवना और सुन्दरी। रम्भा-सम=रम्भा सी सुन्दरी। पतिव्रता=यहाँ सुदामा की

पत्नी से अभिप्राय है। बयार=वायु।

अर्थ—बैठे हुए सुदामा पर रम्भा के समान सुन्दर नारियाँ चारों ओर से चँवर ढोलाने लगीं और उनकी पतिव्रता नारी बड़े प्रेम और आदर से हवा करने लगी।

स्वेत छत्र की छाँह में, राजत तक्र समान।
बाहन गज रथ तुरंग बर, अरु अनेक सुभ यान ॥९४॥

शब्दार्थ—स्वेत=श्वेत, सफेद, धवल। राजत=सुशोभित होती हैं। सक्र=शक्र, इंद्र। बाहन=सवारी। तुरंग=हय, घोड़े। यान=रथ, विमान।

अर्थ—सुदामा जी श्वेत छत्र के नीचे बैठे हुए राजा इंद्र के समान सुशोभित हो रहे हैं। हाथी, घोड़े और रथ के अतिरिक्त अनेक प्रकार के सुन्दर विमान उनके पास थे।

काम धेनु सुरतरु सहित, दीन्हीं श्री बलबीर।
जानि परी गुरु बन्धु हरि, हरि लीन्हीं सब पीर ॥९५॥

शब्दार्थ—बलबीर=श्रीकृष्ण। हरि=कृष्ण। हरि लीन्हीं—सब दूर कर दी।

अर्थ—गुरुभाई बलबीर श्रीकृष्ण ने कल्पवृक्ष और कामधेनु आदि सुदामा जी को प्रदान की और इस प्रकार गुरु भाई श्रीकृष्ण ने सुदामा के सारे दुःखों को दूर कर दिया।

अलंकार—हरि शब्द में यमक अलंकार है।

विवध भाँति सेवा करि, सुधा पियायौ बाम।
अति विनीत मृदु वचन कहि, अब पुरयौं मम काम ॥९६॥

शब्दार्थ—सुधा=अमृत। बाम=स्त्री, पत्नी। पुरयौ=पूर्ण हुआ।

अर्थ—सुदामा की पत्नी ने सब तरह से उनकी सेवा की और उन्हें अमृत का पान कराया। तदन्तर अत्यन्त विनम्रता के साथ कोमल वचन कहे कि अब मेरी सब इच्छायें पूर्ण हो गईं।

ले आयसु तिय न्हायकै, सुचि सुगन्ध सब लाइ।
पूजी गौरि सुहाग हित, प्रीति सहित सुख पाइ ॥९७॥

शब्दार्थ—आयसु=आज्ञा। तिय=स्त्री। गौरी=पार्वती। सुहाग=

सोहाग (सौभाग्य) स्त्री के लिए पति का जीवित रहना सबसे बड़ा सौभाग्य कहा गया है। इसीलिए सधवा नारियों के लिए सौभाग्यवती शब्द का प्रयोग होता है। हित=लिए। प्रीति=प्रेम।

अर्थ—पति से आज्ञा प्राप्त कर सुदामा की पत्नी ने स्नान किया और अत्यन्त पवित्र तथा प्रिय सुगन्ध लगाई। तत्पश्चात् बड़े प्रेम से अपने सौभाग्य रक्षा-हित गौरी-पूजन किया।

षट् रस चार प्रकार के, भोजन रचें बनाय।
कंचन थार मंगाय के, तामें धरे रचाय ॥९८॥

शब्दार्थ—षट्-रस=छः प्रकार के रस, मधुर, खट्टा, कड़वा, चरपरा, नमकीन, कसैला। चार प्रकार के भोजन=भक्ष्य, चर्व्य, लेह्य और पेय। रचा=सजाकर।

अर्थ—सुदामा जी के लिए छः रसों से युक्त चारों प्रकार के भोजन बनाए गये और सोने के थाल में उन्हें सजाकर रखा गया।

चन्दन चौकी डारि कै, दासी परम सुजानि।
रतन जटित भाजन कनक, भरि गंगाजल आनि ॥९९॥

शब्दार्थ—भाजन=बर्तन। कनक=सोना। आनि=लाकर।

अर्थ—भोजन तैयार देखकर परम चतुर दासी ने चन्दन की चौकी बिछा दी और रत्न-जटित सोने के एक पात्र में गंगाजल भरकर रख दिया।

जल भाजन तापर धरयौ, सुचि सुगन्ध जल पूरि।
रच्छाधान समेत सों, जल प्रकाश भरपूरि ॥१००॥

शब्दार्थ—रच्छाधान=(रक्षा+आधान) जल-पात्र रखने का आधार।

अर्थ—रत्न-जटित स्वर्ण-घट को पवित्र और सुगन्धित जल से भरकर एक चौकी और तिपाई पर दासी ने लाकर रख दिया।

रत्न जटित पीढ़ा कनक, धरयौं जु बैठन काम।
मरकत मनि चौकी धरी, कछुक दूरि छवि धाम ॥१०१॥

शब्दार्थ—मरकत-मनि=हरे रंग की मणि, नीलम। छवि धाम=बहुत सुन्दर शोभा का घर।

अर्थ—रत्न-जटित सोने का पीढ़ा सुदामा के बैठने के लिए रखा गया

और कुछ दूरी पर मणियों से युक्त अत्यन्त शोभनीय चौकी रखी हुई थी।

चौकी लई मँगाय के, पद धोवन को पाथ।
मनि पादुका विचित्र अति, धरी सलिल के साथ ॥१०२॥

शब्दार्थ—पाथ=पानी। पादुका=खड़ाऊं। सलिल=जल, पानी।

अर्थ—सुदाम जी सिंहासन पर बैठे हुए थे, उसी के पास जल से पैर धोने के लिए एक चौकी मंगाकर रखी गई और जल के साथ सुदामा के पहनने को मणि-जटित अपूर्व-पादुका भी रख दी गई।

चलिए भोजन करन को, कह दासी मृदु भाखि।
उठे विप्र सानन्द कहि, धन्य-धन्य हरि साखि ॥१०३॥

शब्दार्थ—मृदु भाखि=मीठे शब्दों में। साखि=साक्षी। आशय यह है कि कृष्ण को साक्षी बनाकर सुदामा जी ने धन्य-धन्य कहा।

अर्थ—दासी ने आकर बड़े मधुर शब्दों में सुदामा जी से भोजन करने के लिए चलने को कहा। यह सुनकर सुदामा जी बड़े हर्षावेग से उठे और कहने लगे—"हे हरि! दीनों पर कृपा करने की तुम्हारी मर्यादा धन्य है।"

वसन उतारे जायके, धोवत चरन सरोज।
चौकी पै छवि देत यों, जनु तनु धरे मनोज ॥१०४॥

शब्दार्थ—वसन=वस्त्र, कपड़े। सरोज=कमल। जनु=मानो। तनु धरे=शरीर धारण किये। मनोज=कामदेव।

अर्थ—सुदामा जी ने अपने वस्त्रों को उतारा तथा चरण कमलों को धोने लगे। चौकी पर रखे उनके चरण ऐसे शोभित हो रहे थे मानो साक्षात् कामदेव ने ही शरीर धारण कर लिया है।

अलंकार—रूपक, उत्प्रेक्षा।

पहिरि पादुका बिप्र जब, पीढ़ा बैठे जाय।
रति तें छबि आगरी, पति सौं हंसि मुसकाय ॥ १०५ ॥

शब्दार्थ—रति=कामदेव की स्त्री। छबि-आगरी=सुन्दरता की खान।

अर्थ—पादुका पहनकर जब सुदामा भोजन करने के लिए पीढ़े पर बैठे तब रति से भी अधिक सुन्दर पत्नी उनके पास आकर हंसके-मुसकराने लगी।

अलंकार—व्यक्तिरेक।

बिबिध भांति भोजन धरे, व्यंजन चारि प्रकार।
जोरी पछिऔरी सकल, प्रथम कहैं नहिं पार ॥१०६॥

शब्दार्थ—व्यंजन चारि प्रकार=चार प्रकार के भोजन; चर्व्य, चोष्य, लेस्य और पेय। जोरी=एकत्र की। पछिऔरी=भोजन के बाद दिया जाने वाला पेय, शिखरन, तक्र आदि।

अर्थ—विभिन्न प्रकार के भोजन और चारों प्रकार के व्यंजन के साथ-साथ अन्त में खाई जानेवाली पछिऔरी सुदामा जी के सामने प्रस्तुत किये गये, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

हरिहिं समर्पो कन्त अब, कही मन्द हंसि बाम।
करि घंटा की नाद त्यों, हरि समर्पि लिय नाम ॥१०७॥

शब्दार्थ—समर्पि=समर्पण कर। बाम=स्त्री, पत्नी। नाद=ध्वनि, आवाज।

अर्थ—भोजन सामने आने पर सुदामा की पत्नी ने तब मन्द और धीमी मुस्कान के साथ कहा कि हे प्राणनाथ! अब भगवान का भोग लगाइये। सुदामा ने तब घंटा बजाकर और भगवान के नाम का स्मरण कर उन्हें भोजन समर्पित किया।

अगिन जिमाय विधान सों, वैस्वदेव करि नेम।
बलि काढ़ी जैमन लगे, करति पवन तिय प्रेम ॥१०८॥

शब्दार्थ—अगिनि जिमाय=अग्नि आहुति देकर, अग्निहोत्र कर। विधान—नियम। वैस्वदेव=भोजन के समय का यज्ञ। बलि=गोग्रास, भोजन करने से पूर्व जो भोज्य सामग्री निकाली जाती है, जो कि प्रायः गाय को दी जाती है। पवन करति=पंखा झलती है।

अर्थ—अग्नि और विश्वदेव को आहुति देकर गो-ग्रास निकालकर सुदामा ने भोजन करना प्रारम्भ किया। उनकी पत्नी प्रेम के साथ पंखा झलने लगी अर्थात् हवा करने लगी।

बार-बार पूछति यहै, लीजै जो रुचि होय।
कृस्न कृपा पूरन सबै, अबै परोसौं सोय ॥१०९॥

अर्थ—सुदामा को भोजन करते देखकर उनकी पत्नी बार-बार यही

पूछती थी कि जो वस्तु आपको अधिक रुचिकर हो उसे और ले लीजिए। श्रीकृष्ण के अनुग्रह से अब तो सभी वस्तुएँ उपलब्ध हैं, जो आपको अच्छी लगें वे ही परोसी जा सकती हैं।

जेंइ चुके अँचवन लगे, करन लगे बिस्राम।
रतन जटित पलिका कनक, बुनो सुरेसम दाम ॥११०॥

शब्दार्थ—जेंइ चुके=भोजन कर चुके। दाम=डोरी।

अर्थ—भोजनोपरान्त सुदामा जी ने आचमन किया और वे फिर रेशम की डोरी से बुने हुए रत्न-जड़ित सोने के पलंग पर विश्राम करने गए।

ललित बिछौना बिरचि कै, पायन कसिकै डोरि।
राखे बसन सुसेवकनि, रुचिर अतर सों बोरि ॥१११॥

शब्दार्थ—ललित=सुन्दर। विरचि=बनाकर, सजाकर। अतर=इत्र। बोरी=बसाकर, सुगंधित।

अर्थ—पलंग पर सेवकों ने सुन्दर बिछौना बिछा दिया। पलंग की डोरी कस दी और वस्त्र इत्र आदि सुगन्धित चीजों से तर करके सुवासित कर दिए।

पानदान नेरे धरयो, बदि बीरनि छबि-धाम।
चरन धोय पौढ़न लगे, करन हेत बिश्राम ॥११२॥

शब्दार्थ—नेरे=समीप, पास, निकट। बीरनि=बीड़े। पौढ़ने लगे=लेटने लगे, सोने लगे।

अर्थ—पान के बीड़ों से भरा हुआ बड़ा ही सुन्दर पानदान पास ही पड़ा है। सुदामा जी आराम करने के लिए पैर धोकर पलंग पर लेट गए।

कोउ चंवर कोउ बीजना, कोउ सेवत पद चारु।
अति बिचित्र भूषण सजे, गज मोतिन के हारु ॥ ११३॥

शब्दार्थ—बीजना=पंखा। सेवन=सेवा करता है। गज मोती=हाथी के मस्तक से निकले हुए मोती, बड़े-बड़े मोती।

अर्थ—कोई दासी चंवर डुला रही है, कोई पंखा कर रही है, और कोई उनके चरणों को दबा रही है। उन्होंने गजमोतियों के हार तथा अपूर्व शोभावाले आभूषण पहने हुए हैं।

करि सिंगार पिय पै गई, पान खाति मुसकाति,
कहो कथा श्रीकृष्ण की, जिन दीन्हों यह भान्ति ॥११४॥

अर्थ—सुदामी जी की पत्नी शृंगार करके पान खाती और मुस्कराती हुई पति के पास आकर बोली कि हे स्वामी अब श्रीकृष्ण जी की कथा कहो जिन्होंने हमें इतना धन सम्पत्ति देकर हमारे कष्टों को दूर कर दिया है।

कही कथा सब आदि ते, राह चले की पीर।
सोवत जिमि ठाढ़ो कियो, नदी गोमती तीर ॥११५॥

अर्थ—सुदामा जी ने अपनी पत्नी से शुरू से अपने चलने से लेकर अन्त तक सारी कथा कह दी। अपने गांव से चलकर द्वारिका पहुंचने तक का सारा वृत्तान्त उन्होंने सुना दिया। उन्होंने बताया कि राह चलते-चलते कैसे उनके पैरों में पीड़ा होने लगी थी, फिर किस प्रकार वे रास्ते में ही सो गए थे और कैसे उन्हें गोमती नदी के किनारे पर लाकर खड़ा कर दिया था।

गए द्वार जिहि भाँति सों, सो सब कही बुझाय।
कहि न जाय मुख लाख सों कृस्न मिले ज्यों आय ॥११६॥

शब्दार्थ—बुझाय = बुझाकर, समझाकर।

अर्थ—सुदामा जी कैसे-कैसे श्रीकृष्ण के द्वार तक पहुँचे थे और फिर कैसे अन्दर प्रवेश पा सके थे, सभी कुछ विस्तारपूर्वक अपनी पत्नी को समझा दिया। और श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार उनसे प्रेम तथा स्नेहपूर्वक भेंट की उसका वर्णन तो लाख मुखों से नहीं किया जा सकता, वह वर्णनातीत है, वर्णन किया ही नहीं जा सकता।

कर गहि भीतर लै गए, जहां सकल रनिवास
पग धोवन को आपहीं, बैठे रमा निवास ॥११७॥

शब्दार्थ—रमा-निवास = रमा अर्थात् लक्ष्मी के पति।

अर्थ—सुदामा जी फिर कहने लगे, कि श्रीकृष्ण मुझे हाथ से पकड़कर वहां ले गए जहां उनका समस्त रनिवास था और लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण स्वयं अपने हाथों से मेरे पांव धोने के लिए बैठ गए।

देखि चरन मेरे चल्यौ, प्रभु नयनन से बारि।
ताही सों धोए चरन, देखि चकित नर-नारि ॥११८॥

शब्दार्थ—बारि=जल, पानी ।

अर्थ—चलने से मेरे पैरों की बुरी दशा देखकर श्रीकृष्ण की आंखों से आंसू बहने लगे, और उसी अश्रुजल से मेरे पैर धोए। इसे देखकर वहां उपस्थित सभी स्त्री पुरुष हैरान हो गए।

बहुरि कही श्री कृस्न जिमि, तन्दुल लीन्हे आप।
भेंटे हृदय लगाय कै, मेटे भ्रम सन्ताप ॥११९॥

अर्थ—इसके पश्चात् यह भी बताया कि श्रीकृष्ण जी ने किस भांति अपने आप चावल ले लिए थे और कैसे उन्होंने सुदामा जी को गले लगाया और समस्त दुखों, क्लेशों तथा भ्रमों को दूर कर दिया।

बहुरि कही जेवनार सब, जिमि कीन्हीं बहु भांति
बरनि कहां लगि हौं कहौं, सब व्यंजन की पांति ॥१२०॥

शब्दार्थ—जेवनार=भोजन। व्यंजन=खाने ।

अर्थ—फिर सुदामा जी ने बताया कि उन्हें किस प्रकार अनेक प्रकार के अच्छे-अच्छे भोजन कराए। वे कहने लगे कि अनेकों प्रकार की खाद्य-सामग्री तथा खानों का कहां तक वर्णन करूं, अथवा वर्णन करना ही कठिन है।

दिन प्रति अधिक सनेह सों, सपन दिखायौ मोहि।
सो देख्यौ परतच्छ ही, सपन न निसफल होहि ॥१२१॥

शब्दार्थ—परतच्छ=प्रत्यक्ष, सामने, साक्षात । निसफल=व्यर्थ, निरर्थक।

अर्थ—उन्होंने मुझे अपने पास बड़े स्नेह से रखा और उनका यह स्नेह दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया। फिर उन्होंने मुझे धन-धान्य, सुख, ऐश्वर्य तथा वैभव का सपना दिखाया जिसे मैं आज स्वयं अपनी खुली आंखों से सत्य हुआ देख रहा हूँ। स्वप्न निष्फल नहीं हुआ, सत्य ही हुआ है।

बरनि कथा यहि बिधि सबै, कह्यो अपनौ मोह,
कृस्न कृपानिधि भगत-हित, चिदानन्द सन्दोह ॥१२२॥

शब्दार्थ—मोह=भ्रम । चिदानन्द-सन्दोह=ज्ञान तथा सुख के भण्डार।

अर्थ—इस विधि से सुदामा जी ने अपनी पत्नी से सारी कथा कह

सुनाई फिर उन्होंने यह भी बताया कि द्वारिकापुरी से लौटते समय किस प्रकार उन्हें भ्रम हो गया था और श्रीकृष्ण को बुरा-भला कहा था। वास्तव में श्रीकृष्ण जी तो भक्तों का हित करने वाले ज्ञान और सुख के भण्डार हैं।

साजें सब साज सुसमाज बाजि गजराज,
राजत रुचिर रथ पालकी बहल है।
रतन जटित शुभ सिंहासन बैठिबें कौ,
चौक प्रति कामधेनु कल्पद्रुम लहल हैं।
देखि-देखि भूषन बसन दासि दासन के,
सुख पाकसासन के लागत सहल हैं।
सम्पति सुदामाजू कौं जहाँ लौं दई है प्रभु,
कहाँ लौं बखानौं जहाँ कंचन महल हैं ॥१२३॥

शब्दार्थ—बाजि=घोड़े। बहल=बहली, मंझोली, डोली। साजे=सजाये हैं। साज=सामग्री, सामान। राजत=सजे हुए हैं, सुशोभित हैं। पाकसासन=महाराज इन्द्र। सहल=साधारण, सामान्य, सहज, तुच्छ।

अर्थ—श्रीकृष्ण जी ने जो अतुल सम्पत्ति सुदामा जी को दी उसका वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि उस अतुल सम्पत्ति का वर्णन कहाँ तक किया जाए। जहाँ पर पहले झोंपड़ी थी वहाँ अब राज भवन खड़े हैं, घर भी सोने के ही हैं। सभी प्रकार के साज-सामान उनके यहाँ सजे हुए हैं। घोड़े, गाड़ी, हाथी, सुन्दर रथ, पालकियाँ तथा बैल गाड़ियाँ सभी कुछ उनके पास हैं। रत्नों से जड़ा हुआ सुन्दर सिंहासन बैठने के लिए है। घर के हर एक चौक में कामधेनु खड़ी हैं और कल्पवृक्ष शोभा पा रहे हैं। उनके घर के दास और दासियों के वस्त्र और आभूषण इतने सुन्दर हैं कि उनके सामने स्वर्ग के राजा इन्द्र के सुख तथा विलास भी तुच्छ और फीके प्रतीत होते हैं।

अलंकार—इस पद्य में अनुप्रास के अच्छे दर्शन होते हैं।

बाजिसाला, गजसाला दीन्हें गजराज खरे,
ब्रजराज महाराज राजत समान के।
बानिक विविध बने मन्दिर कनक सोहैं,

मनि जड़े मन मोहै सब देवतान के।
हीरा लाल ललित झरोखन में झलकत,
झूम-झूम झालर झूले हैं मुकतान के।
जानी नहिं बिपति सुदामा जी की कहाँ गई,
देखिए विधान जदुपति जू के दान के॥१२४॥

शब्दार्थ—बाजिसाला=घोड़े रखने की जगह, घुड़साल। बानक=तरीका, बनाव, ढंग। गजसाला=हाथीखाना। राजन समान=राजाओं जैसे। कनक=सोना। मुकतान=मोतियों के। झरोखा=जाली, छोटी खिड़की। झूम-झूम=हिल-हिलकर। जदुपति=श्रीकृष्ण जी।

अर्थ—श्रीकृष्ण जी ने भेंट के उपरान्त सुदामा जी को सम्पत्ति तथा ऐश्वर्य दिया उसके विषय में लिखा है कि ब्रज के महाराज श्रीकृष्ण जी ने सुदामाजी के यहाँ घुड़साल और हाथीखाने में घोड़े और हाथी खड़े कर दिये। कई प्रकार के बने हुए सोने के मन्दिर शोभा पा रहे हैं तथा मन्दिरों में जड़े हुए लाल तथा मणियाँ देवताओं के मन को मोहित कर रही हैं। हीरे तथा लालों की शोभा झरोखों से झलकती हैं तथा मोतियों की मालाएं झूल रही हैं। श्रीकृष्ण जी के दान का ढंग तो देखो कि अब सुदामा को देखकर यह पता ही नहीं लगता कि उनकी दरिद्रता कहाँ चली गई।

अलंकार—'झ' के प्रयोग में अनुप्रास का सुन्दर रूप दिखाई देता है।

कहूँ सपनेहूँ सुबरन के महल होते,
पौरि मनि मंडप कलस कब धरते?
रजत जटित बर सिंहासन बैठिवे को,
खरे ह्वै खवास मो पै चौर कब ढरते,
देखि राज साज निजबामा सो सुदामा कह
कब ये भण्डार मेरे रतनन भरते?
जो पै पतिव्रता तू न उपदेश देती तौ पै
एती कृपा मो पै द्वारिकेस कब करते?॥१२५॥

शब्दार्थ—पौरि=पौली। खवास=सेवक, नौकर-चाकर। बाम=स्त्री। राज सामा=राज सामग्री। मनि मण्डप=मणियों से सजे हुए मण्डप। चौर ढरते=चँवर ढुलाते।

अर्थ—अपनी पत्नी से बात करते हुए सुदामाजी कहते हैं कि हमें जो कुछ भी मिला है वह तेरे कारण ही है। यदि तू मुझे इस प्रकार से आग्रह-पूर्वक उपदेश नहीं करती तो न मैं वहाँ जाता और न ही कृष्ण मुझ पर इतनी दया ही करते। यह सब उनकी कृपा के कारण ही हुआ है। यदि वे कृपा न करते तो स्वप्न में भी हमारे महल सोने के न हो सकते थे तथा पौली में मणियों से जड़े हुए मण्डप तथा उसमें कलस भी न होते। रत्नों से जड़ा हुआ बैठने का सिंहासन कैसे होता तथा सेवक गण खड़े होकर चंवर कैसे डुलाते। अपने भवन में राजसी ठाट-बाट को देखकर सुदामा जी कहते हैं कि हे प्रिये, यह रत्नों से भरे भण्डार भी श्रीकृष्णजी की कृपा के कारण ही हैं।

उठे पहिरि अम्बर रुचिर, सिंहासन पै आय,
बैठे प्रभुता देखि के, सुरपती रह्यौ लजाय॥१२६॥

शब्दार्थ—अंबर=वस्त्र, कपड़े। सुरपति=इन्द्र। रुचिर=सुन्दर। प्रभुता=वैभव, ऐश्वर्य।

अर्थ—इसके बाद सुदामा ने अति सुन्दर वस्त्र पहने और सिंहासन पर आकर बैठ गए उस समय के उनके ऐश्वर्य को देखकर राजा इन्द्र भी लजा गए।

कै वह टूटी सी छानी हुती, कहाँ कंचन के सब धाम सुहावत,
कै पग में पनही न हुती, कहाँ लै गजराजहु ठाड़े महावत।
भूमि कठोर पै रैन कटै, कहाँ कोमल सेज पै नींद न आवत,
कै जुरतो नहिं कोदों सवां, प्रभु के प्रताप ते दाख न भावत॥१२७॥

शब्दार्थ—छानी=छप्पर। कंचन=सोना। पनही=जूता। दाख=किशमिश।

अर्थ—कृष्ण की कृपा से पहले की और पश्चात् की सुदामा की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है कि कहाँ तो वह समय जब उनके पास टूटा-सा छप्पर और झोंपड़ी होती थी और कहाँ आज उस स्थान पर सोने के भवन शोभा पा रहे हैं। कभी तो उनके पांव में पहनने की जूती भी नहीं होती थी परन्तु अब महावत हाथी लिए खड़े हैं। कहाँ तो कठोर भूमि पर ही रात कट जाती थी परन्तु अब उन्हें कोमल सेज पर भी नींद नहीं आती। एक

समय वह था जब उन्हें खाने को जंगली चावल भी प्राप्त नहीं होते थे परन्तु अब भगवान् की कृपा से उन्हें किशमिश आदि भी अच्छी नहीं लगतीं। सुदामा के जीवन में इतने घोर परिवर्तन का कारण भगवान् की दया ही है।

धन्य-धन्य जदुवंश मनि, दीनन पै अनुकूल,
धन्य सुदामा सहित तिय, कहि बरसहिं सुर फूल ॥१२८॥

शब्दार्थ—जदुबंस मनि = यदुवंश शिरोमणि श्रीकृष्णजी। बरसहिं = बरसते हैं।

अर्थ—देवता लोग आकाश से यह कहते हुए पुष्प वर्षा कर रहे हैं कि यदुवंश में शिरोमणि श्रीकृष्णजी दीनों पर दया करते हैं, धन्य हैं। सुदामा तथा उनकी पत्नी भी धन्य हैं।

●